चन्दामामा
मां - बच्चों
पत्र
50
8

Photo by Vidyavrata

पुरस्कृत
परिचयोक्ति

"मेरा बल भर-पूर निराला!"

प्रेषक :
श्री अरुण कुमार, लखनऊ

शीघ्र आ रहा है !
ए.वी.एम चित्र
हम पंछी एक डाल के
नव-निर्माण की कहानी
बच्चों की ज़बानी
AVM
PRODUCTIONS
संगीत : एन. दत्ता
निर्माता : सदाशिव जे. राव कवि
संतोषी

मई १९५७

विषय - सूची

एक प्रति ५० नये पैसे

वार्षिक चन्दा रु. ६-००

ज़रूर लाइए !

नये सिक्के

प्रथम अप्रैल १९५७ से चालू

	वर्तमान सिक्कों में ठीक ठीक समान मूल्य
१० नये पैसे—(एक रुपये का १/१० वां भाग)—	१ आना ७.२ पाइयां
५ नये पैसे—(एक रुपये का १/२० वां भाग)—	९.६ पाइयां
२ नये पैसे—(एक रुपये का १/५० वां भाग)—	३.८४ पाइयां
१ नया पैसा—(एक रुपये का १/१०० वां भाग)—	१.९२ पाइयां

पुराने सिक्के जैसे कि एक पैसा या १/४ आना, २ पैसा या १/२ आना, इकन्नी, दुअन्नी, चवन्नी और अठन्नी भी नये सिक्कों के साथ साथ चालू रहेंगे। चवन्नियां और अठन्नियां क्रमशः २५ नये पैसे और ५० नये पैसे के ठीक ठीक बराबर हैं और सभी प्रकार के उपयोग में लाई जा सकती हैं। नये और पुराने दोनों ही सिक्के भुगतान अथवा हिसाब किताब करते समय कानूनी रूप से मान्य होंगे।

परिवर्तन की सुविधाएं

परिवर्तन की सुविधायें रिजर्व बैंक कार्यालयों, स्टेट बैंक आफ इंडिया की शाखाओं और अन्य एजेंसी बैंकों, ट्रेजरियों और सब-ट्रेजरियों में प्रदान की जाएंगी।

नये सिक्के, वर्तमान सिक्के चार आने अथवा उसके गुणक संख्याओं जैसे कि आठ आने, बारह आने, एक रुपया आदि के बदले में दिये जाएंगे।

परिवर्तन तालिका

परिवर्तन तालिका आने पाई के सिक्कों का नये पैसे में विनिमय मूल्य बताती है (जैसा कि हाल में संशोधित भारतीय सिक्के एक्ट १९०६ के १४(२) वीं धारा के अनुसार पूर्णांकित किया गया है)। कुल राशि के मूल्य का ठीक सही नया पैसा निकालते समय १/२ नया पैसा या उससे कम को छोड़ देते हैं और १/२ नये पैसे से अधिक को एक नया पैसा मान लेते हैं।

एक ही भुगतान में दी जाने वाली राशि के आने पाइयों का नये पैसों में समान मूल्य

वर्तमान सिक्कों में राशि		समान मूल्य के	वर्तमान सिक्कों में राशि		समान मूल्य के	वर्तमान सिक्कों में राशि		समान मूल्य के	वर्तमान सिक्कों में राशि		समान मूल्य के
आने	पाइयां	नये पैसे	आने	पाइयां	नये पैसे	आने	पाइयां	नये पैसे	आने	पाइयां	नये पैसे
०	३	२	४	३	२७	८	३	५२	१२	३	७७
०	६	३	४	६	२८	८	६	५३	१२	६	७८
०	९	५	४	९	३०	८	९	५५	१२	९	८०
१ आना		६	५ आने		३१	९ आने		५६	१३ आने		८१
१	३	८	५	३	३३	९	३	५८	१३	३	८३
१	६	९	५	६	३४	९	६	५९	१३	६	८४
१	९	११	५	९	३६	९	९	६१	१३	९	८६
२ आने		१२	६ आने		३७	१० आने		६२	१४ आने		८७
२	३	१४	६	३	३९	१०	३	६४	१४	३	८९
२	६	१६	६	६	४१	१०	६	६६	१४	६	९१
२	९	१७	६	९	४२	१०	९	६७	१४	९	९२
३ आने		१९	७ आने		४४	११ आने		६९	१५ आने		९४
३	३	२०	७	३	४५	११	३	७०	१५	३	९५
३	६	२२	७	६	४७	११	६	७२	१५	६	९७
३	९	२३	७	९	४८	११	९	७३	१५	९	९८

है जब कि लेन देन के अंत में आने पाइयों को नये पैसों में परिवर्तित करना हो।

आप सारे नये सिक्कों में या सारे पुराने सिक्कों या कुछ नये पैसे और कुछ पुराने सिक्कों दोनों को मिला कर, जैसे भी आप के पास सिक्के हों, भुगतान कर सकते हैं।

परिवर्तन तालिका का प्रयोग केवल लेन देन के अंत में भुगतान करते समय अथवा रेज़गारी देते-लेते समय करना चाहिए। जैसा कि निम्न उदाहरणों में समझाया गया है।

उदाहरण : (जहां राशि आने पाइयों में दी हुई है)

मान लीजिए आपको १२ वस्तुएं डेढ़ आने प्रत्येक के हिसाब से खरीदनी हैं। आपको कुल १ रुपया २ आने देना है। खरीदार चाहे तो १ रु० २ आ० पुराने सिक्कों में दे।

अथवा

१ रुपया और १२ नये पैसे दे (तालिका के अनुसार २ आने का समान मूल्य है १२ नये पैसे)

ऊपर के उदाहरण में खरीदार २ रुपये पुराने सिक्कों में दे सकता है और बाकी पैसे मांग सकता है। उसे १४ आने वापस मिलने चाहिएं। १४ आने पूरे उसे पुराने सिक्कों में दिये जा सकते हैं अथवा कुल नये सिक्कों में अथवा कुछ पुराने सिक्कों और कुछ नये सिक्कों में। मान लीजिए आठ आने पुराने सिक्कों में दिये गये और ६ आने नये सिक्कों में। ६ आने का नये सिक्कों में समान मूल्य निकालने के लिए तालिका का प्रयोग कीजिए जो कि ३७ नये पैसे आता है।

उदाहरण : (जहां राशि नये पैसों में दी हुई है)

मान लीजिए एक वस्तु की कीमत ११ नये पैसे है। कोई भी व्यक्ति यह राशि नये पैसों में दे सकता है अथवा पुराने सिक्कों में १ आना ९ पाई दे सकता है। (तालिका के अनुसार १ आना ९ पाई का नये पैसों में समान मूल्य ११ नये पैसे हैं)

अगर एक व्यक्ति ११ नये पैसों के लिए २० नये पैसे देता है तो उसे ९ नये पैसे वापस देने चाहिएं अथवा समान मूल्य के पुराने सिक्के दिये जाएं जो कि १ आना ६ पाई होते हैं।

११ नये पैसों का भुगतान करने के लिए कोई व्यक्ति चवन्नी दे कर रेज़गारी वापस मांग सकता है। चार आने २५ नये पैसों के बराबर हैं, बाकी १४ नये पैसे लौटाने हैं। ये बाकी पैसे पूरे ही नये सिक्कों या पुराने सिक्कों में दिये जा सकते हैं। तालिका के अनुसार २ आने ३ पाई बराबर होते हैं १४ नये पैसों के। कोई भी व्यक्ति इकन्नी (यानी ६ नये पैसे) और ८ नये पैसे नये सिक्कों में लौटा दे।

दरों या लागत की इकाइयों को जो कि आने-पाई में हों, कुल मूल्य या राशि निकालने के पूर्व नये पैसों में बदलना आवश्यक नहीं है।

उदाहरण :

(१) अगर ३ आने प्रत्येक वस्तु के हिसाब से ५० वस्तुएं खरीदनी हों तो पहले कुल राशि रुपये आनों में निकालिये। आपको ९ रुपये ६ आने देने हैं।

(२) अगर आपके पास केवल नये पैसे हैं तो आप मालूम करते हैं कि ६ आने ३७ नये पैसों के बराबर हैं। इस प्रकार आप ९ रुपये और ३७ नये पैसे चुकाते हैं।

अगर आप ३ आनों का ठीक ठीक समान मूल्य यानी १८¾ नये पैसों को लेते और ५० से गुणा करते तो भी परिणाम यही निकलता, पर यदि आप ३ आने का निर्धारित समान मूल्य परिवर्तन तालिका से यानी १९ नये पैसे लेते और ५० से गुणा करके निकालते तो यह गलत होता।

इसी प्रकार यदि आप विभिन्न दरों की कई वस्तुएं एक साथ खरीदते हैं और वे दरें रुपये-आनों में हैं। पहले आप कुल राशि रुपये आने पाई में निकाल लीजिए। अगर आप नये सिक्कों में मूल्य चुकाना चाहते हैं तो कुल राशि के आने पाइयों को परिवर्तन तालिका के जरिये नये पैसों में बदल लीजिए।

आप परिवर्तन को यह याद रखकर सरल बना सकते हैं कि—

४ आने ... ... बराबर ... ... २५ नये पैसे
८ आने ... ... बराबर ... ... ५० नये पैसे
१२ आने ... ... बराबर ... ... ७५ नये पैसे
१ रुपया ... ... बराबर ... ... १०० नये पैसे

उदाहरण :

(१) मान लीजिए आपको १०½ आने चुकाने हैं। पहले आप ८ आने या ५० नये पैसे दीजिए। शेष ढाई आने जो कि १६ नये पैसों के बराबर हैं, दे दीजिए।

(२) ३६ नये पैसों का आपको भुगतान करना है। पहले आप ४ आने या २५ नये पैसे

चन्दामामा

संचालक : चक्रपाणी

मनुष्य में अनुकरण की प्रवृत्ति शायद स्वाभाविक है। हर कोई किसी और के समान होना चाहता है। बड़े-छोटे, गरीब-धनी, सभी में यह प्रवृत्ति थोड़ी और बहुत मात्रा में पाई जाती है।

अनुकरण की प्रवृत्ति के साथ एक और भावना भी होती है, जिसके ईर्ष्या और स्पर्धा दो रूप हैं। जब ईर्ष्या निर्माणात्मक होती है, तो वह प्रायः स्पर्धा में प्रकट होती है। स्पर्धा जहाँ उन्नति का कारण है, वहाँ ईर्ष्या विनाश का कारण है।

इस ईर्ष्या का सुन्दर उदाहरण 'चन्दामामा' के इस अंक में अन्यत्र दी गई कहानी "ईर्ष्या का फल" में मिलता है।

एक तेलुगु कहावत है, जिसका अर्थ है—एक आँख तो यह जानकर चली गई कि हमारे पास कुछ नहीं है, और दूसरी यह जानकर कि जो हमारे पास नहीं है, दूसरे के पास है, इस ईर्ष्या में चली गई। अतः बालक बालिकाओं को चाहिए कि वे अपने मन से ईर्ष्या को दूर भगावें।

अंक : ९

मई १९५७

वर्ष : ८

मुख - चित्र

अज्ञातवास के लिए पाण्डव अपनी वेष-भूषा बदलकर, विराट राजा से मिलने गये। पहिले युधिष्टिर गया। "राजा! मैं पहिले महाराजा युधिष्टिर की नौकरी करता था। मेरा नाम कंक है। मैं शतरंज खेलने में प्रवीण हूँ। मुझे कृपया अपने दरबार में नौकरी दीजिये।" युधिष्टर ने विराट से कहा। विराट सहर्ष मान गया।

इस बीच द्रौपदी सैरन्ध्री का वेष धारणकर विराट नगर की वीथियों में घूमने-फिरने लगी। रास्ते में उसे कई लोगों ने रोककर पूछा—"तुम कौन हो?" वह उनसे कहती—"मैं सैरन्ध्री हूँ। अगर कोई मेरा पालन-पोषण करे तो मैं उनकी सेवा-शुश्रूषा करूँगी।"

यह बात विराट की पत्नी, सुधेष्णा को मालूम हुई। उसने द्रौपदी को बुलाकर पूछा—"तुम कौन हो? द्रौपदी ने कहा—"मैं इससे पहिले, सत्यभामा और द्रौपदी के पास नौकरी करती थी। मेरा नाम मालिनी है। मैं बाल संवारना, फूल गूँथना, साज-शृंगार करना अच्छी तरह जानती हूँ।"

"अगर मैं तुम्हें अन्तःपुर में रहने दूँ तो राजा विराट, या और किसी की तुम पर नज़र पड़ सकती है और सम्भव है कि इससे तुम्हें दिक्कत हो।" सुधेष्णा ने कहा।

"मालकिन! मेरे पति, पाँच गान्धर्व हमेशा मेरी रक्षा करते रहते हैं। इसलिये मुझे किसी का भय नहीं है।" द्रौपदी ने जवाब दिया। सुधेष्णा उसको अपने पास रखने के लिए मान गई।

थोड़ी देर बाद, रसोइये के वेष में भीम ने आकर विराट से कहा—"महाराज! मैं रसोई करता हूँ। मुझे नौकरी दीजिये। ज़रूरत पड़ने पर मैं मल्लयुद्ध भी कर सकता हूँ। परन्तु खाना बनाना मेरा पेशा है।" इसके बाद विराट ने उसको अपना रसोइया नियुक्त किया। राजा के मनोरंजन के लिए भीम न केवल पहलवानों को ही हराता, अपितु, सिंह आदि से लड़कर अपना बाहु-बल भी दिखाया करता था।

परम लोभी

एक देश में एक लोभी रहा करता था। उसे पता लगा कि संसार में उससे भी बड़े लोभी थे। यह जानकर कि लोभियों का गुरु होने लायक व्यक्ति एक देश में है, वह उसके पास लालच के नये तरीकों को जानने के लिए निकल पड़ा।

वह बहुत दिनों तक पैदल चलने के बाद, गुरु के स्थान पर पहुँचा। गुरु ने उसके आने का कारण जानकर कहा—"पहिले आओ, भोजन तो करें।"

तब लोभी ने कहा—"आप फ़िक्र न कीजिये। मैं साथ रूखी-सूखी रोटी ले आया हूँ।"

"तुम मेरे अतिथि हो।" कहता हुआ गुरु, लोभी को एक दूकान में ले गया। "अच्छी रोटियाँ हैं क्या?" गुरु ने दुकानदार से पूछा। "हैं भाई, मक्खन की-सी रोटियाँ हैं" दुकानदार ने कहा। "हमारे लिये ऐसी रोटियाँ क्यों? रोटी से अच्छा मक्खन ही खरीदेंगे।" कहता हुआ गुरु मक्खन की दुकान पर गया।

"अच्छा मक्खन है, तेल-सा मक्खन" दुकानदार ने कहा। "तो आओ तेल ही जो खरीद लें।" कहकर गुरु ने तेली की दुकान पर पूछा—"क्या अच्छा तेल है?" तेली ने कहा—"साहब, पानी-सा साफ़ तेल है। "तब तो तेल से अच्छा पानी ही है।" कहता हुआ गुरु, लोभी को अपने घर वापिस ले आया और उसने उसको लोटा भर पानी पिलाया।

लोभी का काम पूरा हो गया। वह अपने देश वापिस चला गया।

नरक - वासी

ब्रह्मदत्त जब काशी का राजा था, तब काशी नगर में एक धनी व्यापारी रहा करता था। उसके मित्रविन्दक नाम का एक लड़का था। मित्रविन्दक बड़ा पापी था। व्यापारी के मरने के बाद मित्रविन्दक की माँ ने उसको सन्मार्ग पर लाने के उद्देश्य से एक दिन उससे कहा—"बेटा! दान करो। रीति का पालन करो, धर्म का आचरण करो।" परन्तु उसने माँ की एक भी बात न सुनी।

इतने में कार्तिक पूर्णिमा आई। मित्रविन्दक से उसकी माँ ने कहा—"बेटा! आज शुभ दिन है। रात-दिन विहार में धर्म का उपदेश दिया जायेगा। तुम पूजा करके, उपदेश सुनकर आओ। वापिस आने पर मैं तुम्हें हजार रुपये दूँगी।"

रुपये के लिये मित्रविन्दक मान गया। वह उपदेश सुनने के लिए गया तो, परन्तु एक कोने में सोता रहा। सवेरे उठकर, हाथ-मुँह धोकर वह घर चला आया। यह सोचकर कि लड़का उपदेशक को साथ लेकर आयेगा, माँ ने दोनों के लिए भोजन बनवा रखा था। लड़के को अकेला आता देखकर माँ ने पूछा—"बेटा, उपदेशक को क्यों नहीं साथ लाये?"

"वे, क्यों माँ? मेरा उनसे कोई काम नहीं है" मित्रविन्दक ने कहा।

भोजन करके, माँ से एक हज़ार रुपया वसूल कर, वह अपने काम पर चला गया। वह हज़ार रुपया व्यापार में लगाकर, जल्दी ही उसने २० लाख रुपये कमा लिये।

"इस पैसे को लगाकर, जहाज़ों द्वारा, मैं देश-विदेश में व्यापार करूँगा और अधिक पैसा कमाऊँगा।" मित्रविन्दक ने सोचा। उसने एक जहाज़ खरीदा। उस

पर माल लदवाया। विदेश जाने के पहिले अपनी माँ से विदा लेने के लिए वह उसके पास आया।

माँ ने सब हाल सुना। उसकी आँखों में तरी आ गई। "बेटा! तुम मेरे इकलौते लड़के हो। तुम्हारे पास इतना रुपया है तो और कमाकर क्या करोगे? समुद्र-यात्रा ख़तरनाक होती है। मेरी बात सुनकर यह यात्रा छोड़ दो। घर पर ही रहो।"

मित्रविन्दक ने माँ की बात न सुनी। उसने व्यापार के लिए विदेश जाने की ही ठानी। माँ ने उसका हाथ पकड़कर बहुत समझाया। मित्रविन्दक, माँ को खूब पीटकर, बाहर चला गया।

उसी दिन उसका जहाज़ निकला। समुद्र में, सात दिन तक यात्रा ठीक तरह, निर्विघ्न रूप से चलती रही। परन्तु आठवें दिन, जहाज़ समुद्र में निश्चल-सा खड़ा हो गया। उस दुर्घटना का कारण यह अनुमान किया गया, जहाज़ पर ही कोई था। यह जानने के लिये नाविकों ने हर नाविक का नाम एक एक काग़ज़ पर लिखा। गोलियाँ बना कर उनको मिला दिया। फिर उसमें

से एक को चुना। उस पर मित्रविन्दक का नाम था। इस प्रकार तीन बार उसीका ही नाम आया।

"आपके कारण हम सब पर आपत्ति आनेवाली है। सिर्फ़ आपके लिये इतने आदमियों को मरने नहीं दिया जा सकता। इसलिये आप जहाज़ छोड़कर चला जाइये।" नाविकों ने मित्रविन्दक से कहा। उन्होंने एक छोटी-सी डोंगी में, उसे छोड़ दिया। फिर देखते देखते, जहाज़ बाण की तरह चला गया। आँखों से ओझल हो गया।

थोड़े दिनों बाद अपनी डोंगी में, मित्रविन्दक एक द्वीप में पहुँचा। वहाँ उसे एक स्फटिक महल दिखाई दिया। उसमें चार स्त्री भूत रहा करते थे। वे भूत छः दिन तो दुनियाँ भर का उत्पात करते, फिर सातवें दिन, किये पर पछताते। नियम-नियन्त्रण से रहते। मित्रविन्दक ने उन भूतों के साथ एक सप्ताह खूब ऐश-आराम उड़ाये। जब भूतों ने अपना व्रत शुरु किया, तो उसकी वहाँ रहने की इच्छा नहीं हुई। वह अपनी डोंगी में फिर कहीं निकल पड़ा।

जाते जाते, वह एक द्वीप में पहुँचा। उसमें आठ भूत थे। मित्रविन्दक ने उनके साथ भी सप्ताह भर आराम से बिताया। और जब ये भी कठोर व्रत करने लगे, तो फिर वह अपनी डोंगी में निकल गया।

एक और द्वीप में इसी तरह, उसने सोलह भूतों के साथ समय बिताया, फिर एक और द्वीप में बत्तीस भूतों के साथ उसने आनन्द किया। आखिर वह अपनी डोंगी में एक और द्वीप में पहुँचा।

उस द्वीप में एक बड़ा नगर था। उसके चारों ओर एक दीवार थी, और उस दीवार

में चार दरवाजे थे। वह नरक था। पर मित्रविन्दक को वह नरक की तरह नहीं लगा। उसे वह एक सुन्दर नगर-सा मालूम हुआ।

"मैं इस नगर में प्रवेश कर, इसका राजा बनूँगा।" उसने सोचा।

इस नगर में, एक स्थान पर मित्रविन्दक को एक आदमी दिखाई दिया। वह आदमी अपने सिर पर असिधारा चक्र को रखे हुए था। क्योंकि उसकी धार तेज़ थी, और वह भारी था इसलिये, वह उसके सिर में धँस गया था। सिर पर से, लगातार खून बह रहा था। उस मनुष्य का शरीर जंज़ीरों से जकड़ा हुआ था। वह दर्द के कारण कराह रहा था।

यह सब देखते हुए भी मित्रविन्दक ने सोचा कि वह आदमी उस नगर का राजा था। असिधारा चक्र, मित्रविन्दु को कमल की तरह दिखाई दिया। उसके शरीर की जंज़ीरें उसे आभूषण-से लगे। उसका कराहना, उसे गन्धर्व गान-सा प्रतीत हुआ।

मित्रविन्दक ने उस नरक-वासी के पास जाकर कहा—"आप बहुत दिनों से इस

कमल को सिर पर धारण किये हुए हैं! मुझे भी ज़रा इसे पहिनने दीजिये।"

"महाराज! यह कमल नहीं है। असिधारा चक्र है।"

"तुम मुझे यह देना नहीं चाहते, इसलिये इधर उधर की कह रहे हो।" मित्रविन्दक ने कहा।

"आज से मेरे पाप का प्रायश्चित्त हो गया है। इसने भी मेरी तरह माँ को मारा होगा। इस पाप का फल अनुभव करने के लिये ही यहाँ आया है।" यह मन ही मन सोच नरक-वासी, असिधाराचक्र मित्रविन्दक के सिर पर रख, अपने रास्ते पर चला गया।

स्वर्ग में, बोधिसत्व, इन्द्र के रूप में थे। वे देवताओं को साथ लेकर, नरकों का निरीक्षण करते करते, मित्रविन्दक के पास आये। उन्हें देखकर, मित्रविन्दक ने रोते हुए कहा—"स्वामी! बताइये, इस चक्र से मेरा कब छुटकारा होगा?" वह उनके सामने गिड़गिड़ाया।

इन्द्र ने उसका यों जवाब दिया:

"तेरे पास बहुत रुपया था; पर तूने और चाहा। तेरा लोभ बढ़ता गया। चार, आठ, सोलह और बत्तीस स्त्री भूतों के, साथ तूने मज़ा उड़ाया। मनुष्य को जिस उचित मार्ग पर चलना चाहिये था, तू उनसे दूर रहा। दूसरों ने, तेरे हित के लिए अच्छी भी सलाह दी, पर तूने एक न सुनी, स्वयं तूने यह चक्र अपने सिर पर पहिना। जबतक तू जीवित है, तब तक तुझे यह चक्र नहीं छोड़ेगा। पाप का फल अनुभव कर।"

यह कह, इन्द्र अपने अनुयायियों के साथ चले गये। मित्रविन्दक, दुख के कारण पथरा-सा गया।

[४]

[पद्मपाद ने पिंगल को अपने साथ भल्लूक पर्वत आने के लिए कहा। पिंगल मान गया और उसके साथ चल दिया। कुछ दूर यात्रा करने के बाद स्नान करने के लिए, पिंगल जंगल में एक नाले के पास गया। वहाँ भल्लूक केतु नाम के व्यक्ति ने, जो पत्थरों से जंजीरों से बाँधा गया था, पिंगल की मदद माँगी। पिंगल उसके पास जा ही रहा था कि पद्मपाद पीछे से चिल्लाया]

पद्मपाद का चिल्लाना सुन, पिंगल ने घबराकर पीछे देखा। उसके हाथ से पत्थर फिसलकर नाले में गिर गया। शब्द हुआ।

"पिंगल! उसे तुम क्या समझ रहे हो?" पद्मपाद ने कठिन स्वर में पूछा। पिंगल ने एक बार भल्लूककेतु की तरफ़ देखा, फिर अपना सिर न जाने क्यों झुका लिया।

पद्मपाद की ओर सन्देह की दृष्टि से देखते हुए, भल्लूककेतु ने पूछा—"महाशय! आप कौन हैं? क्यों आप इस युवक को पुण्य-कार्य करने से रोक रहे हैं?"

"पुण्य-कार्य!" कहकर पद्मपाद ज़ोर से हँसा। "क्या मैं नहीं जानता हूँ कि तुम कौन हो?"

भल्लूककेतु जवाब देने ही वाला था कि पिंगल कहने लगा—"इसका नाम भल्लूककेतु है। भल्लूक पर्वतों का, जहाँ हम अब जा रहे हैं, यह कभी अधिपति था। किसी मान्त्रिक के कारण उसकी यह हालत हुई है।"

"हाँ, एक मान्त्रिक के कारण ही इसकी यह हालत हुई है। पिंगल क्या तुम जानते हो कि वह मान्त्रिक कौन था?" पद्मपाद ने पूछा। पिंगल ने सिर हिलाकर बताया कि वह न जानता था।
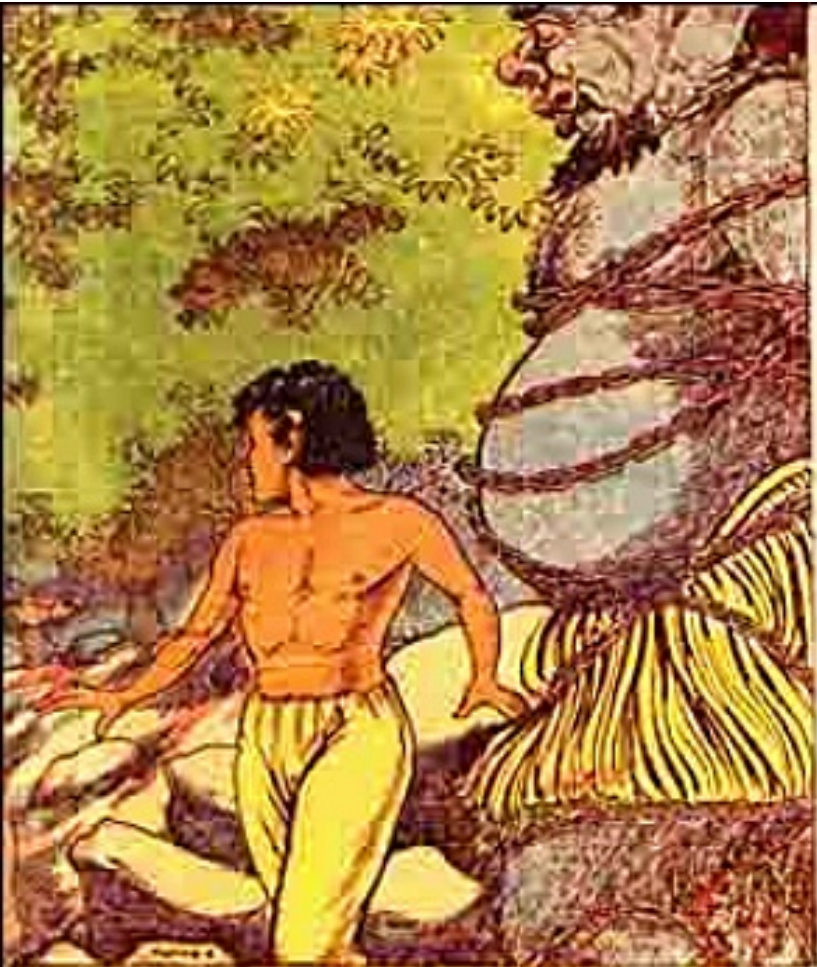
"इस भल्लूककेतु को यहाँ लाकर बाँधनेवाला महा-मायावी ही है।" पद्मपाद ने कहा। और वह भल्लूककेतु की ओर घूर घूर कर देखने लगा।

भल्लूककेतु ने यह सुनते ही, दाँत पीसकर पूछा—"तुम कौन हो? तुम मेरी बात कैसे जानते हो? उस महा-मायावी के बारे में तुम्हें किसने बताया है? कहीं तुम भी तो मान्त्रिक नहीं हो?"

"हाँ, मैं मान्त्रिक ही हूँ। मेरा नाम पद्मपाद है। तुम जैसे बलवान, चालाक, व्यक्ति को जिस ने यहाँ पत्थर से बाँधा है, मैं उसी महा-मायावी की समाधि पर हमला करने जा रहा हूँ।"

"सच? क्या तुम उसकी समाधि पर हमला बोलने जा रहे हो? अगर यह सच है तो आप अवश्य महा-मन्त्रवेत्ता होंगे। मैं महा-मायावी का जानी दुश्मन हूँ। इसलिए आपको मेरी सहायता बड़े काम की होगी। मुझे छुड़वाइये। मैं आपका गुलाम बनकर रहूँगा।"—भल्लूककेतु ने कहा।

"तेरी इधर उधर की बातों का यकीन करने के लिए मैं कोई ऐसा वैसा नादान नहीं हूँ।" पद्मपाद ने कहा।

पिंगल ने पद्मपाद के पास आकर कहा—"पद्मपाद! मैं समझता हूँ, हम

इसकी रक्षा कर सकते हैं। सुना है, इसे किसी ने शाप दे रखा है कि यदि यह वचन देकर मुकर गया तो उसका सिर फट जायेगा।"

"इस बात का विश्वास कर ही तुम आफ़त मोल लेने के लिए उतावला हो रहे थे। जबतक हम महा-मायावी की मन्त्र-शक्ति की वस्तुओं को अपने वश नहीं कर लेते, तबतक हमें इसे नहीं छोड़ना चाहिये। आपत्ति की आशंका है। पहिले हम उन चीज़ों को ले लें, फिर हम उसे छोड़कर अपना गुलाम बना लेंगे।" पद्मपाद ने कहा।

"तो महाशय...." भल्लूककेतु कुछ कहना चाहता था कि पद्मपाद ने उसकी बात काटकर कहा—"भल्लूक! हम तेरी चिकनी-चुपड़ी बातों में नहीं आयेंगे। महा-मायावी की समाधि, जिस उजड़े हुए शिवालय में है, उसमें प्रवेश करने के बाद ही हम तुझे मुक्त करेंगे। तबतक तुझे यहाँ ही रहना पड़ेगा।" कहता हुआ वह चला। पिंगल भी उसके पीछे चुपचाप चल दिया।

पद्मपाद और पिंगल जंगल से बाहर आये। सामने के घास के मैदान में उनको

उनके वाहन, गधे नहीं दिखाई दिये। पिंगल ने आश्चर्य में चारों ओर देखते हुए पूछा—"हमारे पिशाच-वाहन कहाँ हैं? मैं सोच रहा था कि वे इस हरे मैदान में चर रहे होंगे।"

"वे गधे के रूप में भूत हैं, गधे तो नहीं हैं? अगर यह बात है तो भला वे घास-फूस क्यों खायेंगे? वे दोनों खाने-पीने के लिए चले गये हैं। अब हम अपने भोजन के बारे में क्या करें?" पद्मपाद यह कह पेट सहलाता, घास पर धीमे से बैठ गया।
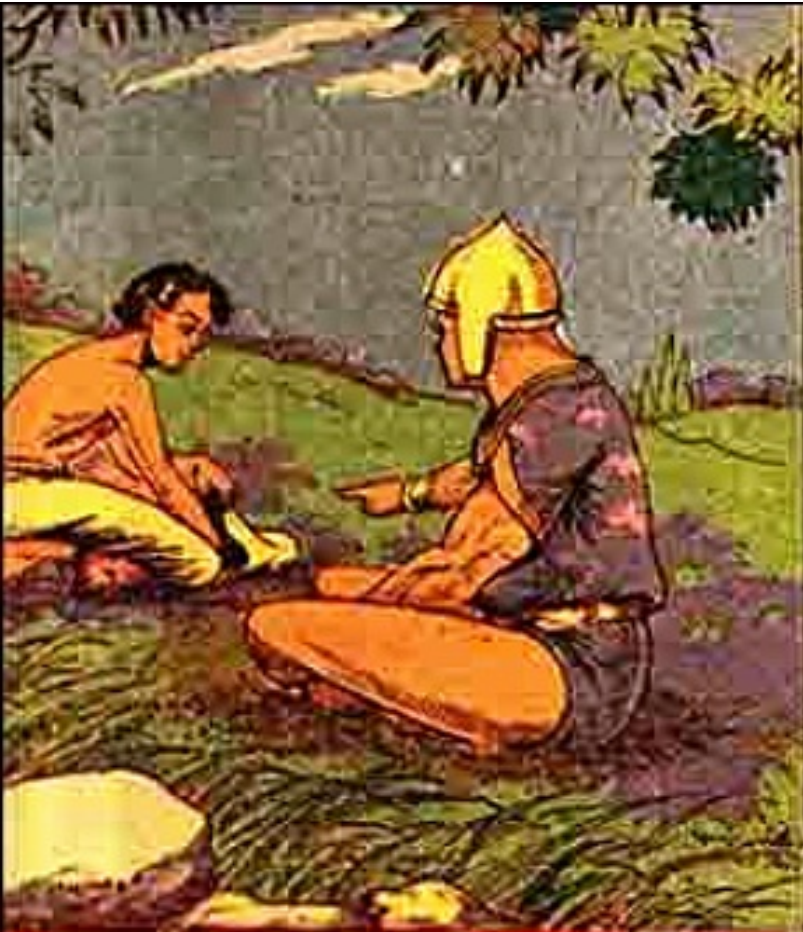
पिंगल भी उसके पास बैठ गया। उसने घबराते हुए कहा—"हाँ, पद्मपाद! मुझे भी बड़ी भूख लग रही है। हम साथ खाने की चीज़ें लाना भूल गये?"

पद्मपाद ने पिंगल की ओर देखकर हँसकर कहा—"पिंगल! वह जो थैला दिखाई दे रहा है, उसे ज़रा इधर तो दो।" उसने थैले के लिये हाथ बढ़ाया।

पिंगल थैला लेकर, अन्दर टटोलने लगा। उसमें खाने-पीने की चीज़ें न थीं। वह निराश हो गया। पद्मपाद ने थैला लेकर पूछा—"पिंगल! तुम्हें कैसा भोजन चाहिये? कितनी तरह की शाक-सब्जी चाहते हो?"

"अरे! कितनी तरह की शाक-सब्जी? भूखे के लिये मुट्ठी भर चावल और अचार काफ़ी है। इस थैले में तो कुछ नहीं है। ख़ाली है।"—पिंगल ने कहा।

पद्मपाद ने थैला खोला। उसमें झाँक कर देखा। कोई मन्त्र जपा।

"पिंगल, अब देखो।" कहते हुए उसने थैले को पिंगल के सामने रखा।

पिंगल ने झट अपना हाथ थैले में रखा। उसके हाथ एक गरम गरम चान्दी का बर्तन लगा। उसने उसे बाहर निकाला। उसमें चावल था। उसने आश्चर्य से पद्मपाद की ओर देखा।

पद्मपाद ने हँसकर कहा—"तुम जितने तरह के शाक या खीर चाहते हो, वे सब इस थैले में हैं। बाहर निकाल लो।"

अभी दस मिनट भी न हुए थे कि पिंगल ने उस थैले में से पचीस शाक-सब्ज़ियाँ और खीर बाहर निकाली। पद्मपाद और पिंगल दोनों भूखे तो थे ही, इसलिये उन्होंने जल्दी

भोजन किया। भोजन के बाद थोड़ा आराम किया और फिर यात्रा के लिये तैयार हो गये।

पद्मपाद ने चुटकी भर मिट्टी ली और मन्त्र फूँककर नीचे फेंक दी। यकायक भूमि फट गई। गधे के रूप में दो भूत रेंकते हुए बाहर निकले। पद्मपाद और पिंगल उन पर चढ़कर भल्लूक पर्वत की ओर निकल पड़े।

दो तीन घंटे यात्रा करने के बाद क्षितिज में, उन्हें काला धुआँ मँडराता हुआ दिखाई दिया। पिंगल ने उस तरफ़ इशारा करके पूछा—"वे जो दिखाई दे रहे हैं, वे बादल हैं, या धुआँ?"

पद्मपाद ने थोड़ी देर उस तरफ़ ध्यान से देखा। फिर कहा—"पिंगल, न वे बादल हैं, न धुआँ ही। वे भल्लूक पर्वत की रक्षा करने वाले राक्षसगण हैं। शायद उन्हें हमारे आने के बारे में पता लग गया है। सम्भव है कि वे हमें डराने की कोशिश कर रहे हैं।

पद्मपाद अभी अपनी बात पूरी न कर पाया था कि सामने करीब पचास गज़ की दूरी पर, बादलों-सा काला धुआँ, भँवरें

खाता, भूमि में से निकला, और ताड़ के वृक्ष के जितना ऊपर उठा।

पिंगल ने डर के कारण काँपते हुए पद्मपाद की ओर देखा। पद्मपाद ने कोई मन्त्र जपा। अपने गधे को उस तरफ़ भगाया। तत्क्षण वह धुआँ गायब हो गया।

पद्मपाद ने पिंगल की ओर मुड़कर कहा—"पिंगल घबराओ मत। यह लो, तुम्हारी रक्षा के लिये यह तलवार देता हूँ। इससे, चाहे राक्षस, किसी भी रूप में तुम्हारे सामने आयें, तुम उनका संहार कर सकते

हो।" पद्मपाद, पिंगल को तलवार दे रहा था कि उनके बीच की भूमि काँपने लगी। उनके दोनों गधे दो तरफ़ भाग निकले। दूसरे क्षण, बड़े बड़े दान्तोंवाला, बड़े बड़े बालोंवाला एक हाथी चिंघाड़ता पिंगल की ओर लपका। पिंगल डरा नहीं। उसने तलवार लेकर हाथी पर हमला किया। तुरत हाथी दर्द के कारण कराहने लगा। काले धुएँ का बादल चक्कर खाता खाता दूर भाग गया।

"शाबाश पिंगल। एक जवान को इसी तरह की बहादुरी दिखानी चाहिये। लोग ठीक ही कहते हैं कि लातों के सामने भूत भी नहीं टिकते। जो तलवार मैंने तुम्हें दी है, उसमें कोई भी मन्त्र-शक्ति नहीं है। अगर मैं यह पहिले बताता तो तुम इतनी बहादुरी से इस जादू के हाथी का मुक़ाबला न करते। अब जान गये कि दिलेर को कोई नहीं झुका सकता।" पद्मपाद ने कहा।

पिंगल ने अपने हाथ की तलवार को एक बार देखा, फिर वह ऐसा हँसा कि उसके पेट में बल पड़ गये। "क्या इस तलवार में सचमुच कोई जादू नहीं है?

खैर, कोई बात नहीं। मैं इससे हजार राक्षसों का भी मुक़ाबला कर सकूँगा। जय, पाताल भूत!" कहता कहता वह तलवार हवा में घुमाने लगा।

पिंगल का साहस देखकर, पद्मपाद बड़ा प्रभावित हुआ। उसने पिंगल की ओर प्रेम से देखकर कहा—"पिंगल! अब हम भल्लूक पर्वत के पास आ रहे हैं। हमें जिस नदी के पास पहुँचना है, वह इन पहाड़ियों की घाटी में है। पैदल चलेंगे तो वहाँ पहुँचते पहुँचते बहुत देर लगेगी। पत्थरों पर चढ़ना-उतरना पड़ेगा। रास्ता मुश्किल है। इसलिये इन भूत गधों को उड़ाकर, पहाड़ों को पार कर वहाँ उतरें।"

पिंगल यह मान गया। दोनों गधे हवा में उड़ने लगे। वे पहाड़ों की चोटियों पर से उड़ते हुए नदी के समीप पहुँचे। पद्मपाद और पिंगल अपने अपने वाहनों से उतरे। तुरत वे कहीं ग़ायब हो गये।

पद्मपाद ने नदी के किनारे बैठकर, नदी के पानी को हिलाया। वह कोई मन्त्र पढ़ने लगा। बड़ी बड़ी लहरें उठने लगीं। और धुआँ भी सर्वत्र छाने लगा। पिंगल मूर्ति की तरह, बिना हिले-डुले, वह दृश्य देख रहा

था। थोड़ी देर बाद पद्मपाद उठा और उसने पिंगल को थैले में से काँच का मर्तबान लाने के लिए कहा।

पिंगल ने काँच का मर्तबान लाकर पद्मपाद के सामने रखा। उसमें मगर के रूप में, महामायावी के दो शिष्यों की तरफ़ पद्मपाद ने आँखें फाड़कर देखा। उसने पूछा—"कम से कम अब तो अपने असली रूप में आओ! नहीं तो तुम्हें भस्म करके इस नदी में मिला दूँगा।" उसने गर्जन किया। तुरत काँच के मर्तबान के टुकड़े टुकड़े हो गये, और टुकड़े हवा में उड़ गये। काले, कुरूपी दो व्यक्तियों ने पद्मपाद को नमस्कार करके कहा—"महा मान्त्रिक! हम आपके गुलामों के गुलाम हैं। कहिये क्या हुआ है?"

"महामायावी की समाधिवाले टूटे-फूटे शिवालय में जाना है। पहिले इस नदी को सुखा दो।" पद्मपाद ने कड़ी आवाज़ में जवाब दिया।

महामायावी के शिष्य, एक दूसरे का मुँह देखकर, जवाब देने में आगा पीछा कर रहे थे कि पद्मपाद ने आँखें लाल-पीली करते हुए पूछा—"मेरी आज्ञा सुनी है कि नहीं?"

महामायावी के शिष्यों ने काँपते हुए पद्मपाद को नमस्कार करके कहा—"इस नदी को सुखाने और टूटे-फूटे मन्दिर में प्रवेश करने से पहिले यहाँ पिंगल नाम के मछियारे का आना ज़रूरी है।"

"हाँ देखो यह ही है वह पिंगल।" पद्मपाद ने यह कहकर पिंगल को दिखाया। महामायावी के शिष्यों ने पिंगल को आश्चर्य से देखकर कहा—"हम आपकी आज्ञा का पालन करते हैं।" यह कह वे तुरत अदृश्य हो गये। (अभी और है)

सर्वनाश

विक्रमार्क फिर पेड़ के पास गया। शव उतार कर, कन्धे पर डाल, श्मशान की ओर चल पड़ा। तब शव में स्थित बेताल ने कहा—"राजा! तुम किसी और के लिए इतना कष्ट उठा रहे हो। पर इस दुनियाँ में बिरले ही कृतज्ञ होते हैं। अगर हम से थोड़ी-सी ग़ल्ती हो जाये, तो वे भी हमारे जानी दुश्मन हो जाते हैं, जिनका हमने कभी उपकार किया था। मैं तुम्हें लोहित की कहानी सुनाता हूँ। सुनो।" उसने यह कहानी सुनाई:

एक ज़माना था जब बल्लभपुर व्यापार के लिए मशहूर था। उन दिनों वहाँ धर्मगुप्त नाम का एक अमीर रहा करता था। वह कहीं से आकर बल्लभपुर में बस गया था। वहाँ उसका कोई रिश्तेदार न

वेताल कथाएँ

था। जब कोई कर्ज़ के लिए आता तो वह बड़े सूद पर कर्ज़ देता। इस तरह उसने काफ़ी रुपया इकट्ठा कर लिया था।

धर्मगुप्त बूढ़ा हुआ। उसके पास पाँच छः लाख रुपये की चान्दी और सोना था। धर्मगुप्त किसी को एक दमड़ी भी न देना चाहता था और बल्लभपुर में उसके कोई बन्धु-बान्धव भी न थे, जिन्हें वह देता।

एक दिन शाम को, जब धर्मगुप्त किसी गाँव से घर आ रहा था तो रास्ते में उसे डाकुओं ने पकड़ कर मारा। सिर पर बड़ा घाव लगा और वह बेहोश गिर गया। पर डाकुओं को उसके पास से कुछ न मिला।

डाकुओं के जाने के बाद, धर्मगुप्त को होश आई। बल्लभपुर पहुँचते पहुँचते आधी रात हो गई। शहर से बाहर, एक घर का दरवाज़ा खुला हुआ था।

"भाई! मार दिया है!" कहता धर्मगुप्त उस आदमी के पास गया।

आधी रात के समय, बाहर खड़ा हुआ व्यक्ति एक सुनार था। उसका नाम लोहित था। लोहित ने जो जेवर-जवाहरात बनाकर थोड़ा बहुत कमाया था, पारस पत्थर के

लिए खर्च कर दिया था। वह तांबे को चान्दी में, और पीतल को सोने में बदलना चाहता था। इसके लिए वह जाने क्या क्या मूल बूटियां, जंगल से लाता और तरह तरह के भस्म बनाता।

लोहित की पत्नी मायके चली गई थी। वह दिन भर भट्टी के पास बैठता। केवल ठण्डी हवा के लिए बाहर आता।

पहिले तो धर्मगुप्त को लोहित ने नहीं पहिचाना। फिर भी वह आगे बढ़कर, बूढ़े को सहारा देकर अन्दर ले गया। भट्टी की आग की रोशनी में उसने धर्मगुप्त को पहिचान लिया। "आप हैं?" उसने पूछा। "डाकुओं ने सिर फोड़ दिया है।" कहता हुआ धर्मगुप्त मर गया।

लोहित यह न जान सका कि क्या किया जाये। अड़ोस-पड़ोस के लोगों को उसने जगाने की सोची। परन्तु उसे डर लगा कि कहीं वे आकर यह न कहें कि तूने ही पैसे के लिए इस बूढ़े को मारा है। धर्मगुप्त तो अब मर ही गया था। आधी रात के समय किसीने उसको उसके घर में आता भी न देखा था। इसलिए लोहित ने उससे पिंड छुड़ाना ही अच्छा समझा।
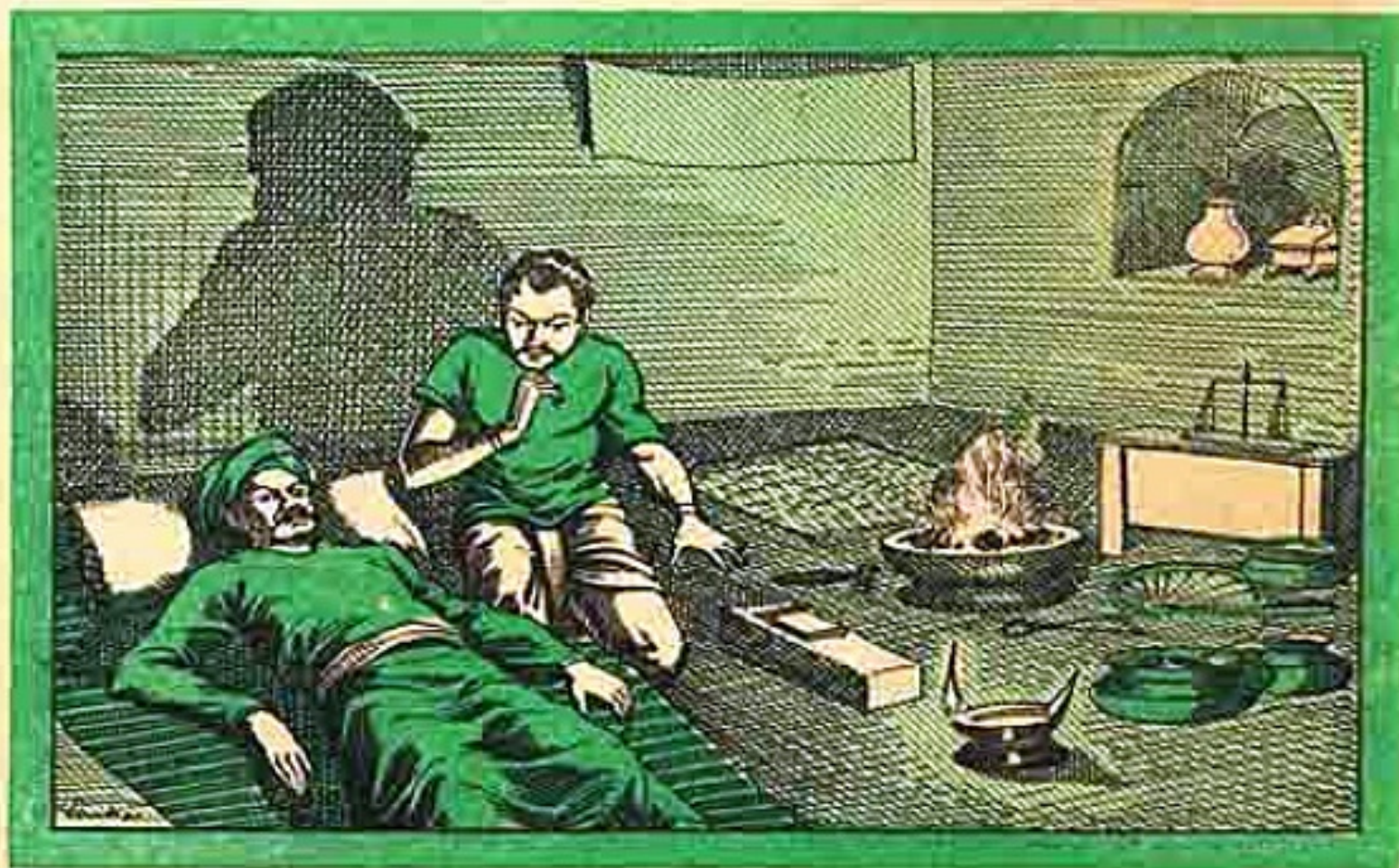
इस बीच उसे एक और बात सूझी। सुना जाता था कि धर्मगुप्त के पास बहुत-सा धन था। उसके कोई बाल-बच्चे भी न थे, जो उसका धन पाते। सारी सम्पत्ति राजा के ख़ज़ाने में चली जायेगी। अगर ज़रूरत हुई तो मैं ही वह धन ले सकता हूँ।

लोहित को अपनी पत्नी और बच्चों पर अधिक प्यार था। उनको सुखी रखने के लिए ही वह पारस पत्थर के फेर में पड़ा था। अब भी उन्हीं के सुख के लिए शव को उसने जब टटोला, तो उसे चाबियों का गुच्छा मिला। चाबियाँ लेकर लोहित सीधे उसके घर गया। तिजोरियों में लाखों रुपयों की चान्दी और सोना था। वह सब एक बोरे में लेकर, वह अपने घर चला आया।

सवेरा होते ही लोहित ने सोना-चान्दी छत पर छुपा दी और उस पर, उपले ढँक दिये। धर्मगुप्त के शव को, उसकी चाबियों के साथ, आँगन में गढ़ा खोदकर उसमें दबा दिया।

दो-तीन दिन तक किसी ने भी धर्मगुप्त के बारे में कुछ न पूछा-ताछा। उसके बाद, उसके विषय में तहकीकात शुरु हुई। कई ऐसे लोग थे, जिन्होंने अन्धेरा होने पर, उसे गाँव से निकलते देखा था। पर किसी ने भी उसे वल्लभपुर पहुँचते न देखा था। लोगों ने समझा कि रास्ते में वह कहीं मर-मरा गया होगा। राज-कर्मचारी आये। उन्होंने धर्मगुप्त के घर के ताले तोड़े, घर की तलाशी लेकर, उन्होंने उसकी सम्पत्ति आधीन कर ली। सम्पत्ति को अधिक न पाकर सबको आश्चर्य हुआ। पर कहीं भी ऐसे कोई आसार न थे, जिनसे यह मालूम होता कि घर में चोरी हुई थी।

जल्दी ही लोगों ने धर्मगुप्त के बारे में बातें करना बन्द कर दिया। लोहित ने सोचा कि अब उसे कोई डर न था। मायके से उसकी पत्नी बच्चों के साथ आ गई।

लोहित ने अपनी पत्नी से कहा—"मालूम हुआ है कि काशी में कोई सिद्ध योगी है और उसको पारस पत्थर का रहस्य मालूम है। मैं काशी जाकर छः महीनों में वापिस आऊँगा।"

लोहित की पत्नी, उसे बहुत चाहती थी। "सोना न मिले तो कोई बात नहीं। आप यहीं रहकर पाँच दस रुपये कमाइये। यही हमारे लिए काफ़ी है। मैं आपको काशी नहीं जाने दूँगी।" उसने कहा। वह रोने पीटने लगी।

लोहित को लाचार हो, पत्नी को सच कहना पड़ा। उसने छत पर, उपलों के नीचे छुपाई हुई चान्दी को भी दिखाया।

"अगर हम कोई चालबाज़ी न करें, तो हम इस संपत्ति का उपयोग नहीं कर सकेंगे। इसलिए मुझे छः महीने कहीं जाने दो। उसके बाद हम महाराजाओं की तरह रह सकेंगे।" लोहित ने अपनी पत्नी से कहा। वह मान गई।

कहीं ऐसा न हो कि किसी को सन्देह हो, लोहित ने एक परिचित व्यक्ति से मार्ग-व्यय के लिए थोड़ा रुपया उधार लिया। वह काशी के लिए निकल पड़ा। जब तक वह वापिस न आया उसके परिवार ने बड़ी गरीबी में दिन गुज़ारे। छः महीने के बाद लोहित घर वापिस आया। और उसने छत पर से सोना-चान्दी उतारी। अगले दिन उसने जान-पहिचानवालों को बुलाकर, सोना-चान्दी दिखाई और कहा—"काशी में एक सिद्ध योगी की दया से मुझे यह सोना

चान्दी मिली है। अब मेरा और मेरे परिवार का जीवन आराम से कट जाएगा।"

सब ने लोहित को बधाई दी। लोहित ने मकान, ज़मीन, बाग़-बगीचे वग़ैरह खरीदे। ज़िन्दगी आराम से कट रही थी।

राजा के एक कर्मचारी को लोहित की ज़मीन-जायदाद पर लालच हुआ। इस कर्मचारी के एक सुन्दर लड़की थी। उस लड़की का उससे विवाह कर, वह लोहित को पहिली पत्नी से दूर करना चाहता था। उसने लोहित को अपने घर बुलाकर, अपनी लड़की को दिखाकर कहा—"यह लड़की तेरे सिवाय किसी और से शादी नहीं करना चाहती।"

वह राज-कर्मचारी बड़े घराने का था। उसकी लड़की बहुत सुन्दर थी। इसलिए लोहित विवाह के लिए मान गया।

कल शादी थी कि लोहित की पत्नी को मालूम हो गया कि उसका पति एक और शादी करने जा रहा था, वह पति के सामने रोई-धोई।

"जब सब प्रबन्ध हो गया है तो अब कैसे शादी रोकी जा सकती है। मुझे मत सताओ।" लोहित ने कहा।

यह जानकर कि पति का उस पर से प्रेम हट गया है, लोहित की पत्नी पागल हो गई। उसने न आगे देखा, न पीछे। तुरत मन्त्री के पास जाकर उसने कहा—"हुज़ूर! कुछ समय पहिले, मेरे पति ने धर्मगुप्त को मारकर, उसकी सारी संपत्ति ले ली थी। धर्मगुप्त के शव को हमारे आँगन में ही गाड़ दिया था। अगर आप चाहें तो उसे खुदवा सकते हैं।"

मन्त्री ने तुरन्त राज-सैनिक भेजे। उन्होंने लोहित के आँगन में खोदकर धर्मगुप्त के शव को निकाला। राज-सैनिक लोहित को पकड़कर ले गये। अदालत में लोहित ने जो कुछ गुज़रा था, बता दिया। पर किसी ने उसका विश्वास न किया। राजा ने हुकुम दिया कि लोहित को फाँसी पर चढ़ा दिया जाये।

लोहित की सारी संपत्ति राजा ने स्वाधीन कर ली। लोहित को फाँसी दे दी गई। पश्चात्ताप में, लोहित की पत्नी, उसके साथ चिता पर सती हो गई। लोहित के लड़के लावारिस हो गये।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर पूछा—"राजा! लोहित के कुटुम्ब के सर्वनाश का

कारण कौन था? क्या यह उसकी पत्नी थी, जिसने पति को किसी और स्त्री से विवाह करता देख, ईर्ष्या में उस पर दोषारोपण किया था? या धर्मगुप्त का धन लूटनेवाला लोहार स्वयं ही था? या राजा, जो यह न जान सका था कि लोहित ने हत्या न की थी, और जिसने उसे फाँसी दे दी थी? अगर जान-बूझकर इन प्रश्नों का उत्तर न दिया तो तुम्हारा सिर फूट जायेगा।"

"लोहित के कुटुम्ब के सर्वनाश का कारण उसकी पत्नी न थी। क्योंकि वह पति को प्रेम करती थी, इसलिए ही उसको इतनी ईर्ष्या हुई थी। वह अपने पति को दूसरी शादी करने से रोकने के लिए, जो कर सकती थी, उसने वही किया। पति की मृत्यु पर सन्तुष्ट नहीं हुई। लोहित की ग़ल्ती भी नहीं है। यह ज़रूर सच है कि उसने धर्मगुप्त के धन की चोरी की थी। पर तब धर्मगुप्त मर चुका था। उस संपत्ति का कोई उत्तराधिकारी न था। अगर थोड़ा समय वह और जीता तो शायद स्वयं वह अपनी संपत्ति उसे दे देता। राजा की ग़ल्ती भी नहीं है। गवाही ऐसी थी कि उन्हें विश्वास करना पड़ा। ख़ैर लोहित के कुटुम्ब के सर्वनाश का कारण सचमुच पैसा था। उस पैसे के कारण ही लोहित ने धर्मगुप्त की हत्या की थी। उस पैसे ने ही दूसरे विवाह के लिए प्रेरित उसे किया था। लोहित की पत्नी को पागल कर, आख़िर वह ही उनके सर्वनाश का कारण हुआ।" विक्रमार्क ने कहा।

राजा का मौन-भंग होते ही, बेताल शव के साथ फिर जाकर पेड़ पर चढ़ बैठा।

(कल्पित)

गौ का गुस्सा

गिद्ध को चकमा देकर, जब खरगोश आ रहा था, तो उसे घर के पास गौ सास दिखाई दी। गौ पर खरगोश को गुस्सा आता था। क्योंकि भूलकर भी गौ कभी उसे एक बून्द दूध भी न देती थी। खरगोश ने उससे बदला लेने की ठानी।

"क्यों सास, क्या हाल-चाल है?"–खरगोश ने पूछा।

"अच्छा हाल है, जमाई! तुम्हारा क्या हाल है?"—गौ ने पूछा।

"अच्छा ही है।" कहते हुए खरगोश ने पासवाले जामुन के पेड़ की ओर देखकर कहा—"बड़ी अच्छी जामुन हैं, देखते ही मुख से लार टपकती है।"

"तब क्या है? तोड़कर खा।"—गौ ने कहा।

"मैं तो पेड़ पर चढ़ नहीं सकता। और अगर कोई पेड़ हिला दे, तो खूब टपकेंगी। क्या तू अपना सिर तने से टकराकर, पेड़ हिला सकती है? तू नहीं कर सकती। उसके लिए तो बहुत बल चाहिए।"—खरगोश ने कहा।

"तू भी मुझे क्या समझता है?" कहते हुए, गौ ने सिर से पेड़ पर टक्कर मारी। क्योंकि पेड़ पर सब कच्चे जामुन थे, इसलिए एक भी नहीं गिरी।

"मैंने कहा था न कि तुझ में उतनी ताकत नहीं है।"—खरगोश ने कहा।

गौ को गुस्सा आया। वह दस कदम पीछे हटी, और ज़ोर से जामुन के पेड़ से टकराई। गौ के दोनों सींग पेड़ में घुस गये और टूट गये। "अरे.... अरे देख! बैल मामा को मदद के लिए

श्री सुमन कुमार जोशी

बुलाकर लाता हूँ।" घर जाकर वह घरवालों को बुला लाया और दूध के लिए बर्तन भी लाया। छोटे-बड़े खरगोश ने गौ का दूध दुहा और दूध लेकर आराम से घर चले गये।

गौ को गुस्सा आ रहा था। वह रात भर सींग निकालने की कोशिश करती रही, सवेरे जैसे तैसे वह सींगों को बाहर निकाल पाई। खरगोश से बदला लेने के लिए उसने सींग फिर पेड़ में घुसेड़ दिये।

खरगोश ने गौ की यह करतूत दूर से देख ली थी। पर जैसे कुछ न मालूम हो, उसने गौ से पूछा—"क्यों सास, मैंने सोचा था कि तुमने अब तक सींग छुड़ा लिए होंगे।"

"तू ज़रा मदद कर, मैं सींग निकाल लूँगा। मेरी पूँछ पकड़कर खींच।"

"अच्छा!" खरगोश ने ऐसा दिखाया जैसे वह गौ के पीछे जा रहा हो। गौ झट सींग निकालकर खरगोश के पीछे भागी। परन्तु कभी का खरगोश भाग चुका था। गौ खरगोश के पीछे भागी।

खरगोश थोड़ी दूर भागा। फिर मेहन्दी की झाड़ी में घुसकर, पत्तों में से वह गौ को देखने लगा। इतने में गाय हाँफती हुई वहाँ आयी।

"क्यों गौ सास! क्या जल्दी है?"—खरगोश ने पूछा।

गौ ने खरगोश की आँखें देखकर समझा कि वे हरिण की आँखें थीं। "क्यों हरिण भाई! क्या तुम्हें वह दुष्ट खरगोश दिखाई दिया था?"—गौ ने पूछा।

"इसी रास्ते वह अभी अभी लंगडाता गया है।"—खरगोश ने कहा।

"अच्छा! ये बात है!" गौ जाने लगी और खरगोश ठट्ठा मारकर हँसने लगा।

(अभी और है)

वंश - मर्यादा

पहिले कभी एक देश में एक ज़मीन्दार रहा करता था। उसका वंश बहुत प्रसिद्ध था। कहा जाता था कि इक्ष्वाकु वंश के समय में उसके पूर्वज राज्य किया करते थे। इसलिए, वंश-मर्यादा को निभाने के लिए, ज़मीन्दार किसी भी तरह का बलिदान करने के लिए तैयार था।

यह ज़मीन्दार बड़ा नादान था। हमेशा अपने पालतू बन्दर से खेला करता। उसके मुकुन्द नाम का एक ही लड़का था। ज़मीन्दार की सारी सम्पत्ति का वह ही उत्तराधिकारी था। इस मुकुन्द को राजा की लड़की से विवाह करने की सूझी। उसने पिता से इस बारे में कहा।

"बेटा! चाहे तुम कुछ भी करो, मुझे पसन्द है। पर कोई ऐसा काम न करो जिससे हमारे वंश के नाम पर धब्बा लगे। मैं केवल यही चाहता हूँ।"—ज़मीन्दार ने कहा।

तुरत मुकुन्द ने राजा के पास जाकर कहा—"महाराज! मैं आपकी लड़की से शादी करना चाहता हूँ। आप जानते ही हैं कि हमारा वंश बहुत बड़ा है। इसलिए विवाह के लिए मुहूर्त निश्चय कीजिये।"

राजा ने मुकुन्द से तो कुछ न कहा, पर अपने नौकरों को बुलाकर हुकुम दिया—"इस मूर्ख को बाहर निकाल दो।"—राजा के सैनिक मुकुन्द को बाहर ले गये।

यह बात ज़मीन्दार के कान में पड़ी तो वह शर्म के कारण मर-सा गया। उनके वंश का अपमान हुआ था। उन्होंने नौकरों को आज्ञा दी कि वे लड़के को उनकी आँखों के सामने न आने दें। फिर उसने

श्री मोहनलाल अग्रवाल

अपने वंश के सब सम्बन्धियों को बुलाकर इस घटना के बारे में बताया।

सब सुनकर, बन्धुओं ने कहा—"कितना अपमान! कितनी बदनामी!"

"यह अपमान केवल मेरा ही नहीं है, आप सब का भी है। इसलिए आप कोई ऐसा उपाय बताइये जिससे वंश का गौरव बना रहे।" ज़मीन्दार ने कहा।

"पहिले मुकुन्द को घर से बाहर निकाल दीजिये।" एक बन्धु ने कहा।

"फिर आपको उपवास करना होगा। इस अपमान के लिए नरबलि दी जानी चाहिए।" एक और सम्बन्धी ने कहा।

"हाँ, वंश की मर्यादा के लिए किसी न किसी को बलिदान होना ही होगा।" शेष बन्धुओं ने कहा।

अगर मुकुन्द चला जाता और ज़मीन्दार मर जाता तो ज़मीन्दार की सारी सम्पति उन बन्धुओं को मिल सकती थी। इसलिए ही उन्होंने यह सलाह दी थी।

ज़मीन्दार ने कुछ सोचकर कहा—"वंश-मर्यादा के लिए, मर-मिटने के लिए मुझे तो कोई आपत्ति नहीं है। पर जिन ज्योतिषियों ने मेरी जन्म-पत्री देखी है, वे सब कहते हैं कि मैं पूरे सौ वर्ष जिऊँगा।"

"जन्म-पत्रियों पर विश्वास नहीं किया जा सकता। भगवान ने किसको कितनी आयु दी है, कोई ज्योतिषी नहीं बता सकता।" बन्धुओं ने कहा।

"अच्छा, चूँकि आप कह रहे हैं कि नरबलि की ज़रूरत है, मैं यह देखूँगा कि नरबलि हो।" यह कहकर ज़मीन्दार ने अपने बन्धुओं को भेज दिया। फिर उसने अपनी पत्नी के पास जाकर कहा—

"हमारे वंश पर एक बहुत बड़ा कलंक लगा है। वंश की मर्यादा के लिए किसी न किसी को बलि होना होगा। और मेरी आयु बहुत लम्बी मालूम होती है। अगर तू मेरे बदले में मर गई तो अच्छा होगा। एक लड़के को जन्म दिया ही है। अगर तू वंश की शान के लिए मर गई तो तेरी कीर्ति शाश्वत रहेगी।"

"क्या अभी मरना है?" ज़मीन्दार की पत्नी ने पूछा।

"कहा है कि देरी करने से अमृत भी विष बन जाता है। यह ले, रेशमी रस्सी! भगवान का नाम स्मरण कर, फाँसी लगा ले।" कहकर ज़मीन्दार ने अपनी पत्नी को रेशमी रस्सी दी।

ज़मीन्दार की पत्नी बहुत देर तक सोचती रही। अपने नादान पति की सलाह पर उसे मरना बिल्कुल पसन्द न था। वंश-मर्यादा के लिए नर-बलि की ही तो ज़रूरत है। उस हालत में अगर किसी की भी बलि दी जाय तो क्या बात है?

यह सोचकर उसने अपने रसोइये को बुलाया। "तुझे एक भेद बताता हूँ, सुन। मुझे एक स्वप्न आया है। स्वप्न में, पार्वती-परमेश्वर ने प्रत्यक्ष होकर कहा—"अगर आज रात ही तुम मर गयीं तो अगले जन्म में तुम एक सम्राट की रानी होगी। और जो मेरे साथ मरेगा, वह सम्राट होकर मेरा पति होगा। क्योंकि पिछले जन्म में मैंने कोई पाप किया था, इसलिए मुझे नादान पति मिला है। कम से कम अगले जन्म में तुम जैसा अक़्लमन्द पति मिलेगा। इसलिए इस रेशमी रस्सी से फाँसी लगा लो। मैं भी पाँच मिनट में, विष खाकर मर जाऊँगी।" ज़मीन्दार की पत्नी ने रसोइये से कहा।

रसोइया काँपते हुए हाथ से रेशमी रस्सी को लेकर चला गया।

वह रसोई घर में जाकर सोच रहा थी कि क्या किया जाय कि इतने में गोदानवाले कमरे में कुछ आहट हुई। जब उसने अन्दर जाकर देखा तो ज़मीन्दार का लड़का, मुकुन्द एक बोरे में चान्दी और सोने के बर्तन डाल रहा था।

"आप हैं हुज़ूर, यह क्या काम है!" रसोइये ने ज़ोर से पूछा।

"चिल्लाओ मत! तुम नहीं जानते, क्या हुआ है। मेरे कारण मेरे वंश का अपमान हुआ है। नरबलि की आवश्यकता है। इसलिए मैं आत्म-हत्या करने जा रहा हूँ। इस बोरे में, बोझ रखकर, गले में लटकाकर नदी में कूद जाऊँगा।" मुकुन्द ने कहा।

"इतनी मेहनत की क्या ज़रूरत है? यह लीजिये रेशमी रस्सी। छत की गर्डर से लटक कर, आराम से फाँसी लगा लीजिये।" रसोइये ने मुकुन्द को रेशमी रस्सी दे दी।

"शाबाश! अच्छी सलाह दी है। तुम जाओ, सोओ। मैं फाँसी लगा कर मर जाऊँगा।" मुकुन्द ने कहा।

रसाइये ने गोदाम के कमरे का दरवाज़ा बन्द कर दिया और आराम से जाकर सो गया।

सवेरा हुआ। ज़मीन्दार उठकर अपनी पत्नी के कमरे में गया। उसका मरना तो अलग, वह बड़े आराम से सो रही थी। ज़मीन्दार ने उसे उठाकर पूछा—"क्या तुम मरी नहीं!"

"नहीं तो! मालूम है, हमारा रसोइया कितना विश्वास-पात्र है। हमारे वंश की मर्यादा के लिए वह मरने के लिए तैयार है। हम उसका ऋण नहीं चुका सकते।" ज़मीन्दार की पत्नी ने कहा। परन्तु उन्हें, रसोई घर में, रसोइया चूल्हा जलाता, दिखाई दिया।

"क्या तुम अभी जीवित हो!" ज़मीन्दार की पत्नी ने पूछा।

"मैं क्या करूँ मालकिन! कुँवर साहब ने जबरदस्ती मेरे हाथ से रस्सी छीन ली और कहा कि वे ही गला घोटकर मर जायेंगे। मैंने बहुत कहा पर उन्होंने एक न सुनी।" रसोइये ने कहा।

ज़मीन्दार ने, गोदाम के कमरे में जो पैर रखा तो उन्हें छत से कुछ लटका हुआ

दिखाई दिया। वह ज़मीन्दार का पालतू बन्दर था।

"क्या वह लड़का ही है? देखो।" ज़मीन्दार ने पत्नी से कहा।

"अन्धेरे में ठीक तरह दिखाई नहीं दे रहा है।" पत्नी ने कहा।

इतने में ज़मीन्दार के बन्धु यह जानने के लिए आये कि नरबलि दी गई थी कि नहीं। ज़मीन्दार उन्हें सारा वृत्तान्त सुनाकर गोदाम के कमरे में ले गया।

मरे बन्दर को नीचे उतारा गया। ज़मीन्दार को सन्देह हुआ कि वह मुकुन्द नहीं है। "है क्यों नहीं? सचमुच वह आपका लड़का है। उसने वंश की मर्यादा की रक्षा की है।" बन्धुओं ने कहा। ज़मीन्दार ने विश्वास कर लिया।

बन्दर का दहन-संस्कार किया गया। वर्ष ख़तम होने से पहिले ही ज़मीन्दार भी मर गया। उसकी सम्पत्ति को रिश्तेदारों ने आपस में बाँट लिया।

पिता की मृत्यु के बाद, मुकुन्द सम्पत्ति के लिए दूर देश से आया।

उसने अपने बन्धुओं से कहा—"सुना है, आप लोगों ने मेरी ज़मीन-जायदाद हड़प ली है। मेरी सम्पत्ति मुझे लौटा दीजिये।"
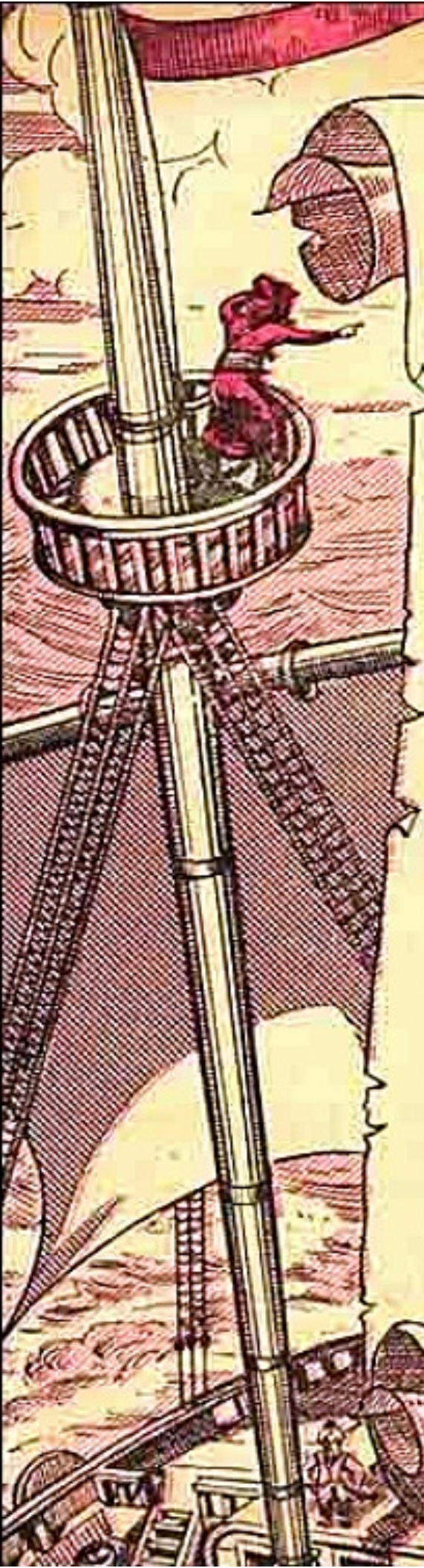
"तुम कौन हो?" बन्धुओं ने पूछा।

"मैं ज़मीन्दार का लड़का मुकुन्द हूँ।" मुकुन्द ने कहा।

"उसे मरे तो एक साल हो गया है। हम सब तब हाज़िर थे। उसके मरने पर यही कहते सुना गया कि केवल ज़मीन्दार का बन्दर न दिखाई दिया था। वह शायद तुम ही हो। पर तुम मुकुन्द हरगिज़ नहीं हो।" ज़मीन्दार के सम्बन्धियों ने मुकुन्द को भगा दिया।

नाविक सिन्दबाद

उसका शव देखकर मुझमें कुछ बल आता-सा लगा। ढाढ़स भी बँधा। मैं बड़ी तेज़ी से समुद्र के किनारे भागा। वहाँ मुझे सौभाग्य से कुछ नाविक दिखाई दिये। एक जहाज़ भी लँगर डाले हुए था। उन्होंने फल और पानी के लिए जहाज रोक रखा था। मुझे देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ और वे मुझ पर प्रश्नों की बौछार करने लगे। मैंने अपनी कहानी सुनाई। जब मैंने उनको बताया कि वह बूढ़ा, किस तरह एक भूत की तरह मुझ पर सवार था और कैसे मैंने उससे छुटकारा पाया था, तो उन लोगों ने कहा—"और....तुम उस बूढ़े के हाथ से ही छूटकर आ रहे हो! उसने कितनों को ही, अपने पैरों से कुचलकर मारा है। तुम ही एक हो जो उससे छूटकर आये हो। तुम्हारा भाग्य अच्छा है।"

वे मुझे अपने जहाज़ में ले गये। कप्तान ने मुझे पहिनने के लिये कपड़े दिये। उसने तभी जहाज़ का लंगर उठाया, जब उसने पूरी तरह मेरी कहानी सुन ली थी।

पांचवीं समुद्र - यात्रा

कई दिन के सफ़र के बाद हम एक शहर में पहुँचे। कप्तान ने मुझसे कहा कि वह एक बड़ा शहर था, दूर दूर से वहाँ व्यापारी व्यापार करने के लिए आते थे। उसने मुझे यह भी बताया कि क्योंकि उस शहर के चारों ओर लंगूर अधिक थे, इसलिए उस शहर को लंगूरपुर कहते थे।

मैंने सोचा कि शहर में जाने से शायद रोज़ी का कोई रास्ता निकल जाय। इसलिए एक व्यापारी के साथ, मैं भी जहाज़ उतरकर शहर में गया। मेरे दोस्त व्यापारी ने मुझे एक थैला देते हुए कहा—"इस थैले में नुकीले पत्थर डालकर तुम भी उन लोगों में शामिल हो जाओ, जो झुण्डों में शहर के फाटक से निकल रहे हैं। वे सब शहर के पासवाली घाटी में जायँगे। वहाँ जो वे करें तुम भी करना। तुम्हें ज़रूर फ़ायदा होगा।"

उसकी सलाह के अनुसार मैंने थैले में पत्थर डाल लिये। जब मैं शहर के फाटक के पास पहुँचा तो लोगों का एक झुण्ड बाहर जा रहा था। सबके हाथों में, मेरे थैलों की तरह थैले थे। मेरे मित्र ने उनसे मेरा परिचय कराते हुए कहा—"ये बिचारा गरीब है। दूर देश का रहनेवाला है। इसे भी रोज़ी का रास्ता दिखाकर पुण्य कमाओ।"

थोड़ी दूर चलने के बाद, हम एक गहरी घाटी में पहुँचे। उसमें बड़े बड़े पेड़ थे। उन पर चढ़ने के लिए कोई भी मनुष्य साहस नहीं कर सकता था। सुना कि उन्हें नारियल का पेड़ कहते हैं, उनके ऊपर नारियल और लंगूर थे।

हम सब पेड़ के नीचे रुक गये। बाकी लोग थैले नीचे रखकर, लंगूरों को पत्थर मारने लगे। लंगूर नाराज़ हो उठे और

वे नारियल लोगों पर फेंकने लगे। आदमी नारियल चुनकर थैलों में डालने लगे। थैले जब भर गये, तो उन्हें लेकर वे शहर की ओर गये। वहाँ मेरे दोस्त ने, जो नारियल मैं लाया था, वे खरीद लिये, और उनके बदले मुझे अच्छे दाम दे दिये। इस तरह रोज मैं घाटी में जाता, नारियल इकट्ठे करके लाता, और उन्हें बेचता। थोड़े दिनों बाद मेरे पास इतना रुपया जमा हो गया कि मैं मोतियों के द्वीप में जा सकता था।

जाते हुए मैंने अपने साथ बहुत से नारियल लिए। रास्ते में मैंने नारियल बेचे और उनके बदले में काली मिर्च और लौंग आदि खरीद लीं। मुझे इस व्यापार में इतनी आमदनी हो गई कि मोतियों के द्वीप में, मोती चुनने के लिए मैं मज़दूर आदि भी रख सका।

क्योंकि भाग्य मेरे साथ था, इसलिए मोतियों की सीप में मुझे अच्छी मोतियाँ मिल गईं। उन्हें अच्छे दाम पर वहाँ के व्यापारियों को बेचा। अच्छा लाभ हुआ। अब मुझे घर जाने की इच्छा हुई। मैं वापिस घर जाने के लिये आवश्यक प्रबन्ध करने लगा। रास्ते के बन्दरगाहों में व्यापार करने के लिए, मुझे ज़रूरी माल खरीदना अच्छा लगा। इसलिए मसाले, वग़ैरह जो वहाँ बहुतायत से मिलते थे, खरीदकर मैंने जहाज़ पर लदवा दिया। उन्हें बेचता हुआ, मैं बसरा होता हुआ—यथासमय बग़दाद पहुँचा।

मुझे वापिस आया देखकर मेरे बन्धु-बान्धव और मित्र बहुत प्रसन्न हुए। मेरी क्योंकि काफ़ी आय हुई थी, मैंने गरीबों को दान-दक्षिणा दी। और मैं आराम से अपनी ज़िन्दगी बिताने लगा।

अयोग्य मित्र

एक देश में एक धनी रहा करता था। उसके एक लड़का था। जब वह बड़ा हुआ तो पिता ने उससे कहा—"बेटा, जीवन में सबसे अधिक बहुमूल्य स्नेह है। पैसा कमाया जा सकता है। यश भी कमाया जा सकता है। परन्तु मित्रों का पाना बहुत मुश्किल है। इसलिए जैसे भी हो तुम अच्छे लोगों से स्नेह करके उनको मित्र बनाओ।"

तब से वह मित्रों की खोज में लग गया। शीघ्र ही उसके चारों ओर कई युवक मँड़राने लगे। वे उसके साथ बड़े स्नेह से रहते, और ऐसा दिखाते जैसे वे उसके लिए अपना सब कुछ न्योछावर कर देंगे।

थोड़े दिनों बाद पिता ने लड़के को बुलाकर पूछा—"क्या बेटा! तुम्हारा कोई दोस्त बना है अभी तक?"

"हाँ पिता जी! बहुत से दोस्त बने हैं।"

पिता ने आश्चर्य से पूछा—"क्या वे सचमुच अच्छे दोस्त हैं?"

लड़के ने थोड़ी देर सोचकर कहा—"हाँ उनमें सच्चे दोस्त कम से कम दस होंगे।" "मैं इतनों दिनों से जीवित हूँ। पर मुश्किल से मेरा कोई एकाध दोस्त है। अगर तुमने इस थोड़े समय में ही दस दोस्त बना लिए हैं, तो मुझे विश्वास नहीं होता।" पिता ने कहा।

लड़के ने कहा कि ज़रूरत पड़ने पर वे अपने प्राण भी मेरे लिए दे देंगे।

"यह बात आसानी से साबित की जा सकती है।" पिता ने कहा—"पर तुम एक काम करो। एक सूअर को मारो। उसको बोरे में रख, कन्धे पर डाल, छुपे छुपे एक एक दोस्त के

कुमारी उषा भटनागर

पास जाओ और उनसे कहो कि तुमने एक आदमी को मार दिया है। अगर यह बात किसी को पता लग गई तो ज़रूर फाँसी की सज़ा होगी। अगर किसी ने मेरी मदद की तो उसके भी फाँसी लगने की आशंका है। फिर तुम उनकी मदद माँगना। तब देखें, क्या होता है।"

लड़के ने वही किया। वह एक मरे हुए सूअर को बोरे में डालकर, एक एक मित्र के पास गया और मदद माँगी। किसी ने भी उसकी सहायता न की।

"इस हालत में, मैं तुम्हारी क्या मदद कर सकता हूँ? कहीं किसी से यह न कहना कि तुम इस शव को लेकर मेरे घर आये थे। तुम्हारी मदद तो योंही न कर सकता। फिर मुझे भी व्यर्थ इसमें फँसना होगा।" एक मित्र ने कहा।

"मैं तेरे साथ फाँसी पर चढ़ने के लिए तैयार हूँ, पर उससे तेरा कोई फ़ायदा न होगा।" एक और दोस्त ने कहा।

"तुझे इस आफ़त में पड़ा देख मुझे बहुत दया आती है। तुझे इस जीवन में मैं कभी न भूलूँगा।" एक और मित्र ने कहा।

"जब तुझे फाँसी लगादी जायेगी, तब मैं तेरे शव का जुलूस निकालूँगा। बड़े धूमधाम से अन्त्येष्टि संस्कार करवा दूँगा।" एक और साथी ने कहा।

लड़के ने पिता के पास आकर सब सुना दिया।

सुनने के बाद पिता ने सिर हिलाते हुए कहा—"मैंने यह पहिले ही सोचा था। याद है मैंने कहा था कि मेरे एकाध ही दोस्त हैं! यह भी देखो कि वे तुम्हारी किस तरह मदद करते हैं।"

पिता की सलाह पर, बोरे को कन्धे पर डालकर, उसने पिता के दोस्त के पास जाकर वही कहा, जो उसने अपने मित्रों से कहा था। उस मित्र ने सब सुनकर कहा—"तुम कौन हो, मैं तुम्हें नहीं जानता। परन्तु तुम्हारा पिता मेरा मित्र है। उसके लिए मैं तुम्हारी मदद करूँगा।"

फिर उसने सुअरवाले बोरे को चुपचाप, रात में, अपने आँगन में दबवा दिया। उसने लड़के से कहा—"अब बेफ़िक्र रहो, मज़े से इधर उधर घूमो।"

लड़के के द्वारा यह जानकर, पिता ने नौकर से पटवारी को ख़बर भिजवाई। उसने पटवारी से कहा—"हुज़ूर! मेरे मालिक का लड़का, एक आदमी को मारकर, बोरे में डालकर, फ़लाने के घर गया है। उसने उस बोरे को अपने आँगन में दबवा दिया है। और इस तरह हमारे मालिक के लड़के की रक्षा की है।"

तुरन्त पटवारी वहाँ गया और उसने आँगन में, बोरा खुदवाकर निकलवाया।

रईस के दोस्त ने पटवारी से कहा—"हुज़ूर यह बात सही है कि

यह लड़का हमारे घर आया था और उसने अपना परिचय दिया था। न उससे पहिले, न उसके बाद मैंने इस लड़के को देखा था। बिना मेरे जाने उसी ने मेरे आँगन में यह बोरा गड़वा दिया होगा। मैं इस बारे में कुछ नहीं जानता हूँ।"

इस बीच में, रईस के लड़के ने अपने पिता के दूसरे दोस्त के पास जाकर कहा—"मैंने गुस्से में एक आदमी को मार दिया था। मेरे पिता के एक दोस्त ने, लाशवाले बोरे को अपने आँगन में गड़वा दिया है, परन्तु यह बात लोगों को पता लग गई है। मुझे ज़रूर फाँसी की सज़ा शायद मिले। कुछ भी हो, क्या आप मेरी मदद न कर सकेंगे?"

यह सुनते ही, रईस का दोस्त पटवारी के पास गया। उसने उससे कहा—"सुना है कि फलाने लड़के पर हत्या का अभियोग लगाया गया है। सचमुच उसने हत्या नहीं की है। हत्यारा मेरा लड़का है। एक हत्या करे, और दूसरे को दण्ड मिले, यह अच्छा नहीं है। इसलिए लाचार हो मुझे सच कहना पड़ रहा है। उस लड़के को छोड़ दीजिये और मेरे लड़के को सज़ा दीजिये।"

यह जानते ही रईस ने अपने लड़के से कहा—"देखा! अच्छा मित्र किस प्रकार मदद करता है? यह न सोचो कि हर कोई मित्र है।" वह यह कहकर पटवारी के पास गया। जो कुछ गुज़रा था उसने कह सुनाया। "उस बोरे में आदमी नहीं सूअर है। बोरा खोलकर देखिये।" उसने कहा।

पटवारी ने जब बोरा खोला तो वह चकित हो गया।

मित्र-भेद

दमनक से बोला तब करटक—
"बंधु, यही मेरी भी राय,
टूटे जिससे मैत्री उनकी
वैसा ही तुम करो उपाय।"

यह सुन दमनक चला वहाँ से
गया शीघ्र पिंगलक के पास,
संजीवक उस समय कहीं था
चरता सुख से कोमल घास।

दमनक को लखते ही पिंगलक
बोला—"आओ, बैठो पास!"
शीश नवाकर तब वह बोला—
"आया है कुछ कहने दास।

वैसे नहीं ज़रूरत मेरी
रही आपको अब है नाथ,
फिर भी मैं तो दास आपका
नहीं छोड़ सकता हूँ साथ।

मंत्री-पद है दिया आपने
उसे निभाना ही है काम,
हित की बात न बोलूँ मैं तो
कहलाऊँगा नमकहराम!"

पिंगलक बोला—"कहो कहो तुम,
क्या है कोई भारी राज़?
अभय-वचन देता हूँ तुमको
कहो निडर हो सब कुछ आज।"

दमनक बोला—"स्वामी मेरे,
बात लगेगी बहुत विचित्र;
संजीवक जो शत्रु आपका
उसको आप समझते मित्र।

उसने मुझसे कहा एक दिन—
पिंगलक का बल देख लिया है,
उसे मारकर राज्य करूँगा
मन में यह भी ठान लिया है।"

सुनी शेर पिंगलक ने उसकी
जब ये बातें वज्र-कठोर,
बोल न पाया तब वह कुछ भी
हृदय उठा सहसा झकझोर।

श्री 'भारतीभक्त'

इस पर पिंगलक बोला फिर से—
"दमनक, चाहे कुछ हो तथ्य,
संजीवक प्रिय मुझे रहेगा
यह तो है बिलकुल ध्रुव सत्य।

लाख दोष रहने पर भी क्या
प्रिय जन को तजते हैं लोग?
मित्र हमेशा मित्र रहेगा
भले पड़े कुछ भी दुर्योग।"

सुन यह दमनक लगा सोचने
और बाद में दिया जवाब—
"राज-काज में ये सब बातें
होती हैं, प्रभु, बड़ी खराब।

सम्मुख लखकर के खतरे को
आँख मूँद यदि लेंगे आप,
तो मैत्री का सुन्दर वर भी
बन जाएगा कटु अभिशाप।"

पिंगलक बोला—"कुछ भी कह लो
संजीवक पर मुझको नाज;
नेक उसे समझा था पहले
बुरा उसे क्यों कह दूँ आज।

मैत्री के पथ आगे बढ़कर
नहीं फिरा सकता मैं पैर;
मित्र रहेगा ही वह मेरा
करे भले मुझसे ही वैर।"
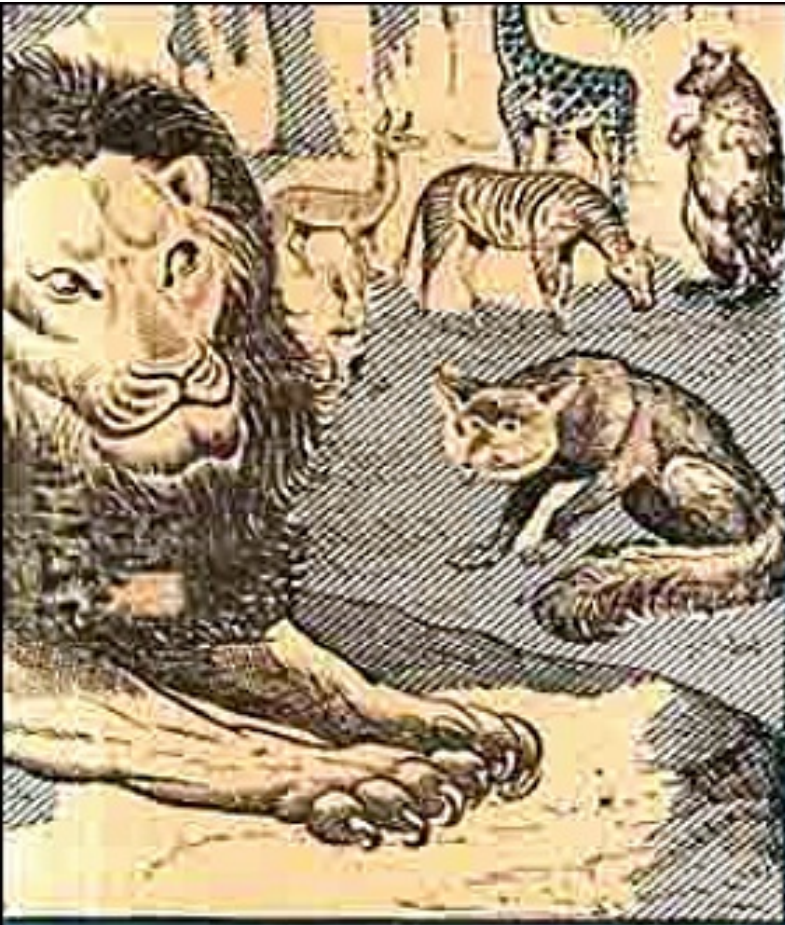
गुमसुम बैठा रहा देर तक
बाद उसे फिर आया होश,
तब बोला—"ना, संजीवक को
दे न कभी सकता मैं दोष।

वह मेरा है सखा, और मैं
करता हूँ उस पर विश्वास,
शत्रु उसे मैं मान न पाता"—
कहा छोड़ उसने निःश्वास।

दमनक बोला—"स्वामी, जग में
नहीं असंभव कोई बात;
राज्य-लोभवश विश्वासी भी
छिपकर करता है बहु घात।"

दमनक बोला—"नहीं और कुछ,
यह भावुकता का परिणाम ;
राज-धर्म को भूल आपने
किया विधाता को है वाम।

कहाँ घास वह चरनेवाला
कहाँ आप बलशाली शेर,
मैत्री ही बेमेल जुड़ी है
रहे अचम्भित सब हैं हेर।

सुनें, आपका रंग-ढंग लख
हुई प्रजा भी जाती रुष्ट,
बना रखा है मित्र बैल को
रहे घास जो खाकर तुष्ट।

संग-दोष से दुख बढ़ता है
औ' अक्सर आ जाती मौत,
कहता हूँ मैं कथा कि कैसे
राजा एक मरा बेमौत !—

एक दिवस था क्षुधित बहुत ही
जंगलवासी एक सियार,
भूख मिटाने भटका भटका
चला गया नगरी के द्वार।

पर अन्दर जाते ही उसपर
पड़े वहाँ के कुत्ते टूट,
जिसमें व्याकुल हुआ बहुत वह
गया हृदय का साहस छूट।
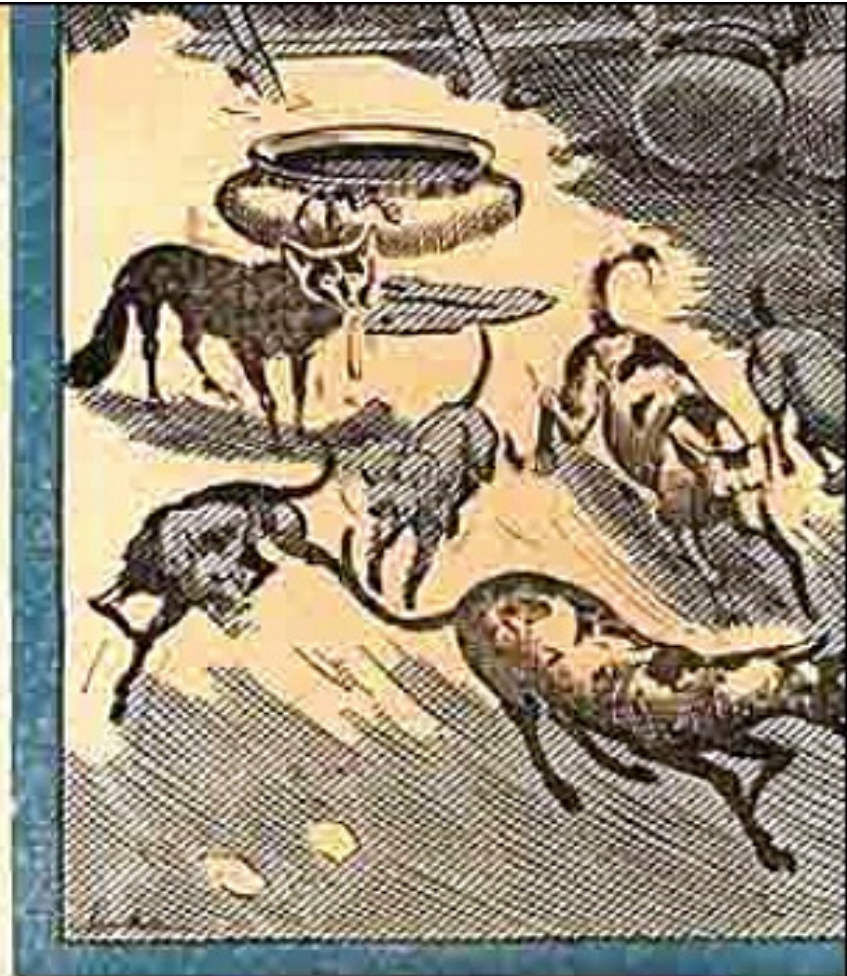
फिर भी उनसे जान बचाता
भागा सिर पर रखकर पाँव,
निकल गया वह उधर जिधर था
सिर्फ़ धोबियों का ही गाँव।

मिला सामने जो घर, उसमें
घुसा वेग से तीर समान,
लेकिन अंदर गिरा हौज में
जिसका उसे नहीं था भान।

उसी हौज में धोबी ने था
घोल रखा जो नीला रंग,
उसमें रँगकर सियार का भी
हुआ एक दम नीला अंग।

ईर्ष्या का फल

एक गाँव में बलभद्र नाम का एक किसान रहा करता था। उसके बहुत से बच्चे थे। बलभद्र रोज़ जंगल जाकर ईन्धन काट लाता था। ईन्धन से जो कुछ पैसा मिलता, उससे थोड़ा बहुत आटा खरीद लेता, बच्चों को रूखा-सूखा खिलाता और खुद खाता। पति-पत्नी, जैसे तैसे गुज़ारा कर रहे थे। भले ही, बलभद्र कितनी ही कोशिश करे पर न उसको, न उसके परिवार को ही पेट भर खाना मिलता।

एक दिन सवेरे कन्धे पर कुल्हाड़ी डालकर, जंगल की ओर चला तो बून्दा बान्दी हो रही थी। जब वह जंगल में पहुँचा तो मूसलाधार वर्षा होने लगी। उसको वहाँ एक उजड़ा झोंपड़ा दिखाई दिया। वह उसमें खड़े होकर प्रतीक्षा करने लगा कि वर्षा कब समाप्त होती है।

परन्तु वर्षा समाप्त न हुई। "सूखी लकड़ियाँ सब गीली हो गई होंगी। गीली लकड़ियाँ अगर ले गया तो कोई नहीं खरीदेगा। आज शायद बच्चों को एक रोटी भी न नसीब हो।" यह सोचते हुए, बलभद्र ने झोंपड़े के चारों ओर देखा। एक तरफ़ उसको एक लकड़ी की मूर्ति दिखाई दी। पास जाकर उसने देखा तो वह किसी देवी की मूर्ति थी।

"देवी की मूर्ति हो या देवता की मूर्ति हो, इससे क्या? वह लकड़ी की मूर्ति है। वर्षा में भीगी भी नहीं है। उसे काटा तो बहुत-सा ईन्धन हो जायेगा। भले ही सारा जंगल छान जाऊँ, पर सूखी लकड़ी के मिलने की सम्भावना नहीं है। इसे ही काट-कूटकर ले जाऊँगा। कुछ पैसे बन जायेंगे। बच्चे थोड़ा बहुत खा-पी सकेंगे।"

श्री मोहन दास गुप्त

यह सोच बलभद्र कुल्हाड़ी लेकर मूर्ति के सिर पर मारने ही वाला था कि मूर्ति के अन्दर से आवाज़ आई :

"अरे....ठहर! मेरा सिर तोड़ता है! मुझे तूने क्या समझ रखा है?"

बलभद्र ने कुल्हाड़ी नीचे रख दी। मूर्ति को नमस्कार करके उसने कहा—"माँ! क्षमा करो। मैं नहीं जानता था कि तुम इसमें हो। मैंने सोचा था कि तुम कोई ऐसी मूर्ति हो जिसका पूजा-पाठ नहीं होता था। मैं ईन्धन काटने आया था कि वर्षा आ गई। सारा जंगल गीला हो गया। और तुम इस मूर्ति में हो। अब क्या है, सारे परिवार को फ़ाका करना होगा।"

"अरे! मैं तेरी गरीबी जान गई हूँ। मुझे तुझ पर बिल्कुल गुस्सा नहीं है। गरीबी इससे बड़े बड़े अपराध भी कराती है। देख, मैं तुझे एक बात बताऊँगी। तू घर जाकर, एक नया घड़ा लेकर, मेरा नाम याद कर, खाली चूल्हे पर रखना। तुरत उसमें, तेरे और तेरे परिवार के लिए काफ़ी भोजन पक जायेगा। तुझे और तेरे परिवार को खाने-पीने की कोई दिक्कत न होगी। बाल-बच्चों के साथ आराम से रहना।" मूर्ति ने कहा।

बलभद्र ने अपने हाथ की कुल्हाड़ी को दूर फेंक दिया। मूर्ति के चरणों में साष्टांग कर, बिना बारिश की परवाह किये, वह घर चला गया।

उसे खाली हाथ आता देख उसकी पत्नी ने आश्चर्य से पूछा—"लकड़ी काटकर नहीं लाये हो? कुल्हाड़ी कहाँ है? क्या हम सब आज भूखे ही रहेंगे?"

"आज से न हमें लकड़ी की ज़रूरत है, न कुल्हाड़ी ही की। देवी ने हम पर

कृपा की है।" कहते हुए बलभद्र ने जो कुछ जंगल में गुज़रा था, सुनाया।

बलभद्र की पत्नी एक नया हँडा लाई। उस पर एक ढक्कन रखकर उसने खाली चूल्हे पर रख दिया। जब उसने ढक्कन खोलकर देखा, तो उसमें सब तरह के भोजन थे और पकवान भी। पति-पत्नी, बाल बच्चे, जीवन में पहिली बार पेट भर खाकर सो गये।

उसके बाद, बलभद्र के परिवार को खाने-पीने की कभी तंगी न हुई! वे हमेशा षडरसोपत भोजन करते।

वे न केवल स्वयं ही खाते, परन्तु आसपास के लोगों को भी बुलाकर खिलाते।

बलभद्र के घर की बगल में एक और घर था। उस घर के घरवाली का नाम था मन्दोदरी। मन्दोदरी ने, उनको—जिन्हें ज़िन्दगी में पेट भर खाना न मिला था; अच्छा खाता-पीता देखकर सोचा—"हमारे पास इतना सब कुछ है, और हम ही रोज़ पकवान नहीं खा पाते हैं और ये गरीब रोज़ कैसे मिठाई वग़ैरह बनाकर खाते हैं? कैसे पांच दस आदमियों को रोज़ खिला पाते हैं? ये इतने धनी कैसे हो गये?"

उसने बलभद्र के छोटे लड़के को बुलाकर पूछा—"तेरा बाप, जंगल जाकर लकड़ी काटकर भी नहीं ला रहा है। ये खाने पीने की चीज़ें कहाँ से ला रहा है? रोज़ तुम्हारी माँ अकेली इतने पकवान कैसे तैयार करती है?"

बलभद्र के लड़के ने मन्दोदरी से साफ़ कह दिया—"जंगल में एक देवी हम पर पसीज गई है। वह ही हम को यह सब देती है। हमारी मां रसोई नहीं करती, न हमारा पिता ही ईंधन वग़ैरह कुछ लाता

है।" उसने जंगल में जो गुज़रा था उसके बारे में भी बता दिया। यह सुनते ही मन्दोदरी को बड़ी ईर्ष्या हुई। सिर पर कपड़ा डालकर, वह आहें भरती एक कोने में बैठ गई। रसोई भी न की। जब बच्चों ने खाना माँगा तो उन्हें डाँट-डपटकर पीटा।

भोजन के समय उसका पति आया। रसोई में चूल्हे को खाली देखकर उसने पूछा--"क्यों! क्या बात है?"

"क्या बात? गाँव का हर ऐरा-गैरा देवी की कृपा पाकर, बिना हाथ-पैर हिलाये पेट भर, बढ़िया भोजन उड़ा रहा है, और यहाँ दिन रात काम करना पड़ता है।" मन्दोदरी ने कहा।

उससे सारी बात मालूम करके मन्दोदरी के पति ने कहा—"तो अब मुझे क्या करने के लिये कहती हो?"

"अरे पूछते क्या हो? कुल्हाड़ी लेकर जाओ। और जंगल वाली देवी को धमकी दो कि सिर फोड़ दूँगा। वह तुम्हें वर देगी। मैं आज से खाना नहीं पकाऊँगी।" मन्दोदरी ने कहा।

"कहीं देवी-देवताओं का सिर फोड़ा जाता है?" पति ने पूछा।

"तुझे कुछ भी समझ नहीं है। जो देवी माँगने पर नहीं देती है, वह मारने पर देती है।"

यह अनुमान कर कि जब तक वह उसका कहा न मानेगा, वह उसे चैन से न रहने देगी, मन्दोदरी का पति कन्धे पर कुल्हाड़ा रखकर जंगल गया। ढूँढने के बाद, उसे वह उजड़ा झोंपड़ा और देवी की मूर्ति दिखाई दी। मन्दोदरी के पति ने उसके पास जाकर कुल्हाड़ी उठाई। तुरत भूमि काँपी। मूर्ति में से कोई प्रकाश निकला और उसकी आँखें अन्धी

हो गई। वह बेहोश-सा हो गिर गया। उस समय उसको एक भयंकर आवाज़ सुनाई दी :

"नीच। मेरे सिर पर ही कुल्हाड़ी उठाता है! मुझे क्या समझ रखा है!" मन्दोदरी का पति काँप उठा। उसका सारा शरीर आग-सा हो गया और मानो लपटें निकलने लगीं।

"माँ! क्षमा करो। अनजाने मैंने यह अपराध किया है। बलभद्र के यही काम करने पर तुमने उसको वर दिया था। मुझे क्यों नहीं वर देते!" उसने पूछा—

"बलभद्र जन्म से दरिद्र था। तुम तो दरिद्र नहीं हो। तुम्हें क्यों क्षमा करना चाहिये!" मूर्ति ने पूछा।

"अगर वह दरिद्र था, तो मैं अज्ञानी हूँ। क्षमा करो माँ।" मन्दोदरी का पति रोया-धोया।

"एक शरत पर तुझे इस समय क्षमा करती हूँ। मैंने वर दिया था कि बलभद्र के हांडे में सब कुछ आ जाये। पर घी देना भूल गया था। बिचारे ये सब बिना घी के खा रहे हैं। इसलिए रोज उनके घर जाकर तू सेर भर घी उनको देते रहना। अगर तू यह बात मानता है, तो मैं तुझे क्षमा कर दूँगी।" मूर्ति ने कहा।

"तुम्हारी जैसी इच्छा माँ। जो तुम कहोगी वही मैं करूँगा। परन्तु मेरी ग़ल्ती माफ़ करो।" मन्दोदरी के पति ने कहा। वह यकायक फिर स्वस्थ-सा हो गया। उसने घर जाकर पत्नी को सारा वृत्तान्त सुनाया। "क्या यह यों ही कहा गया है कि स्त्री की बुद्धि प्रलयकारी है। आज से रोज़ बलभद्र के घर सेर भर घी भेजना।" उसने कहा।

मन्दोदरी और कुछ न कर सकती थी। इसलिए उसने वैसा ही करना शुरू किया।

[७]

[ग्रीकों के ट्रोय नगर का घेरा डाले नौ वर्ष हो गये थे। तब ग्रीक लोगों में आपसी फूट के कारण, वज्रकाय युद्ध भूमि छोड़कर चला गया। यह देख ट्रोजनों ने ग्रीक लोगों का बुरी तरह पीछा किया। एक ग्रीक जहाज़ में आग भी लगा दी। अब वज्रकाय से तटस्थ न रहा जा सका। वह फिर युद्ध भूमि में आगया। ट्रोजनों का मुख्य वीर, वीरसिंह, वज्रकाय के हाथों मारा गया। भुवन-सुन्दरी को उठाकर ले जानेवाले, मोहन ने सूर्य मन्दिर में, वज्रकाय की ऐड़ी में बाण मार कर उसे मार दिया।]

वज्रकाय की मृत्यु के बाद, परम्परा के अनुसार, प्रतियोगितायें हुईं। दौड़ में, देवमय और चक्र फेंकने में भूधव जीते।

वज्रकाय की माँ तटनी ने कहा कि जो कोई ग्रीक सेना में सब से अच्छा योद्धा होगा, उसी को वह वज्रकाय के अस्त्र-शस्त्र दे देगी। रूपधर और भूधव ने ही, जो वज्रकाय की लाश साहस करके सुरक्षित लाये थे, यह प्रकट किया था कि वे ही उसके आयुधों के योग्य थे। कोई और यह हिम्मत न कर सका।

उन दोनों में कौन शक्तिशाली था, यह राजा निर्णय न कर सका। इसलिए उसने वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध नवधोत से इस विषय में सलाह माँगी।

[एक ग्रीक पुराण कथा]

"हमारा पराक्रम हमारे शत्रु ही अच्छी तरह जान सकते हैं। हमारे वीरों के बारे में वे क्या सोच रहे हैं, यह जानने के लिए, अपने गुप्तचरों को रात में क़िले की दीवारों के नीचे भेजिये।" नवद्योत ने राजा को सलाह दी।

ग्रीक गुप्तचर, उसकी सलाह के अनुसार, ट्रोय नगर के क़िले की दीवारों के पास गये। वहाँ उन्होंने कुछ युवतियों को आपस में बातचीत करते हुए देखा।

वे युवतियाँ, वज्रकाय की लाश को ले जाने के बारे में ही बातचीत कर रही थीं। उनकी बातें गुप्तचरों को सुनाई पड़ रही थीं :

"हमारी सेना बाणों की वर्षा कर रही थी, पर भूधव ने बाणों की परवाह न की। वह कन्धे पर वज्रकाय को डालकर ले ही गया। सचमुच उसका साहस और पराक्रम प्रशंसनीय है।" एक ट्रोजन युवती ने कहा।

तुरत एक और स्त्री ने कहा—"अगर कन्धे पर लाश ही ढोनी हो तो कोई भी गुलाम औरत वह कर सकती है। उसमें क्या पराक्रम है! अपनी और भूधव की

रक्षा करता हुआ, शत्रुओं का मुकाबला करनेवाला रूपधर ही सचमुच बहादुर है।"

बाकी स्त्रियों ने भी इसका समर्थन किया।

गुप्तचरों ने यह बात राजा तक पहुँचाई। तब राजा ने वज्रकाय के अस्त्रों को रूपधर को ही दिलवा दिया।

यह वस्तुतः भूधव का अपमान था। यदि वज्रकाय जीवित रहता, और उसके सम्बन्धी भूधव का इतना अपमान होता, तो न जाने वह राजा और प्रताप का क्या करता! वह नहीं है, इसीलिए तो राजा ने रूपधर को अधिक पराक्रमी निश्चित किया था।

गुस्से में, मानो भूधव की अक्ल ही जाती रही। ग्रोजनों के चुराये हुए पशु सब एक ही जगह बंधे हुए थे। उन्मत्त हो भूधव ने उन सब को मार दिया। दो सफ़ेद खुरवाले भेड़ों को देखकर उसने सोचा कि उनमें से एक राजा नहीं तो प्रताप था, और उसने उसका गला काट दिया। दूसरे को रूपधर समझकर, उसने कोड़े से मारा। तब उसका उन्माद शान्त हो गया। वह समुद्र के तट के पास गया। और वहाँ छुरी भोंक कर उसने आत्म-हत्या कर ली।

प्रताप ने कहा कि उसके शव का वीरोचित रूप से दहन-संस्कार नहीं किया जा सकता था। इसलिए उसने उसे गाड़ देने की आज्ञा दी। परन्तु रूपधर को यह बात न जची। उसने उसके वीरोचित दहन-संस्कार का प्रबन्ध किया।

वज्रकाय की मृत्यु के कारण ग्रीक निरुत्साहित हो गये थे। दिव्य दृष्टिवाले, कांग्रुक ने बताया कि लेम्नोस द्वीप के राजा धनधव के पास देवताओं के धनुष बाण, हैं। जब तक ग्रीक वे नहीं ले आयेंगे, ट्रॉय नगर को न जीत सकेंगे।

इस काम को करने के लिए राजा ने रूपधर और देवमय को एक जहाज़ देकर भेजा। लेम्नोस द्वीप, ग्रीक शिविर से, क़रीब चालीस मील दूर था। ग्रीक वीर जब पहुँचे तो धनधव एक भयंकर फोड़े के कारण बीमार था। रूपधर ने, जो बहुत तेज़ था, इधर उधर की बातें बनाकर धनुष-बाण हथियाने की सोची; पर देवमय ने उसकी चाल न चलने दी। धनधव को देवताओं ने प्रत्यक्ष होकर कहा—"तू ट्रॉय चले जाना। उस युद्ध में, तू कीर्ति और लाभ प्राप्त करेगा। तू और वज्रकाय का लड़का नवद्योत, ट्रॉय नगर के पतन के कारण होंगे। अगर तुम दोनों से कोई भी न हो तो उस नगर का पतन नहीं होगा।"

इसलिए धनधव अपने दिव्य धनुष-बाण को लेकर ग्रीक वीरों के साथ युद्ध भूमि में आया। ग्रीक सेना में कई ऐसे वैद्य थे, जो शल्य चिकित्सा में प्रवीण थे। उन्होंने धनधव से स्नान कराया। सुलाकर फोड़े की शल्य चिकित्सा की। दवा लगाकर, नागमणि शिला चिपका कर पट्टी बाँधी।

जल्दी ही, धनधव का फोड़ा ठीक हो गया। वह जिस दिन स्वस्थ हुआ,

उसी दिन युद्ध में गया और मोहन को बाण-युद्ध के लिए ललकारा। इस युद्ध में धनधव ने जो पहिला बाण छोड़ा तो वह मोहन को लगा ही नहीं। पर दूसरा बाण, मोहन के बायें हाथ में लगा, जिसमें उसने बाण पकड़ रखा था। तीसरे बाण से, मोहन की बाईं आँख उड़ गई। चौथे बाण धनधव ने मोहन के पैर की ऐड़ी में मारा।

मोहन को ख़तरे में देखकर, प्रताप ने एक चोट से उसे यम के पास भेजने की सोची। परन्तु मोहन लँगड़ाता लँगड़ाता, प्रताप के हाथ में बिना आये, क़िले के अन्दर चला गया। मोहन की चिकित्सा के लिए, इडा पर्वत से औषधियों को लाया गया। परन्तु उनके आने से पहिले उसने प्राण छोड़ दिया।

मोहन के मरते ही, मोहन के भाई चन्द्र और अरिभयंकर, भुवन-सुन्दरी को पत्नी बनाने के लिए आपस में लड़ने लगे। क्योंकि अरिभयंकर ने युद्ध में अधिक पराक्रम दिखाया था। इस कारण वर्धन ने उसके पक्ष में ही फ़ैसला किया। परन्तु भुवन-सुन्दरी यह न भूल पाई थी

कि वह स्पार्टा की रानी थी, और प्रताप की पत्नी थी। वह अपने ग्रीक लोगों से मिलने के लिए, एक दिन क़िले की दीवार पर चढ़कर, बाहर जाने के लिए रस्सियाँ ठीक करने लगी। उस समय, एक पहरेदार ने उसको देखा और उसको पकड़ कर फिर राजमहल में ले गया।

अरिभयंकर ने उससे जबर्दस्ती विवाह किया। ट्रोजनों को यह विवाह बिल्कुल न पसन्द था।

चन्द्र को वैराग्य-सा हो गया। वह ट्रोय नगर छोड़कर, इडा पर्वत पर रहने

के लिए चला गया। कांशुक ने राजा से कहा कि यदि जैसे तैसे चन्द्र को पकड़ लिया गया तो उससे युद्ध के भेद जाने जा सकते थे। राजा ने रूपधर को चन्द्र को पकड़ने के लिए भेजा।

चन्द्र, जब सूर्य मन्दिर में, हेमा के पिता का अतिथि था तब रूपधर उसको ढूँढ़ता ढूँढ़ता वहाँ पहुँचा।

"मैं जान बचाकर यहाँ भाग कर नहीं आया हूँ। इसी मन्दिर में, मोहन ने वज्रकाय को अन्याय से मारा था। उसका अभी तक प्रायश्चित नहीं किया गया है। यह बात ही मुझे बाँध रही है। अगर कहीं दूर, किसी सुरक्षित जगह पर मेरे रहने का प्रबन्ध किया गया, तो मैं ट्रॉय के भेद बता सकता हूँ।" चन्द्र ने रूपधर से कहा।

इस के लिए रूपधर मान गया।

"आगामी ग्रीष्म में ट्रॉय नगर का पतन निश्चित है। परन्तु उससे पहिले तीन बातें होनी चाहिये। एक: पीसा में, धूम्रमुख की भुजा की हड्डी है। वह तुम्हारे शिबिर में पहुँचनी चाहिये। दो: नवयोध को युद्ध में उतरना होगा। तीन:

बुद्धिमति देवी की मूर्ति को क़िले से ले जाना होगा। जब तक वह वहाँ है, आप ट्रोय नगर को नहीं जीत सकेंगे।" चन्द्र ने रूपधर को बताया।

यह भेद मालूम होते ही, राजा ने धूम्रमुख की हड्डी लेने के लिए, कई आदमियों को पीसा भेजा। वज्रकाय का लड़का नवयोध १२ वर्ष का था और स्कैरास में रह रहा था। उसको लाने के लिए, रूपधर, रक्तवर्ण और देवमय जहाज़ों में निकले। नवयोध ने अभी युद्धभूमि में पैर रखा ही था कि उसको अपने पिता वज्रकाय की प्रेतात्मा दिखाई दी। रूपधर ने, वज्रकाय के शस्त्र-अस्त्रों को नवयोध को दे दिये।

यद्यपि आयु में नवयोध छोटा था, तो भी उसने पिता के नाम को, युद्धभूमि में बनाये रखा। उसने युद्ध-व्यूह के बारे में भी, ग्रीक लोगों को सलाह दी।

अब बुद्धिमति की मूर्ति के चुराने की बात रह गई थी। यह काम, रूपधर और देवमय ने स्वयं करने का निश्चय किया। रूपधर ने देवमय से अपने को इस तरह पिटवाया कि सारे शरीर से

खून बहने लगा। वह शरणागत गुलाम की तरह ट्रोय नगर में घुसा। उसको केवल भुवन-सुन्दरी ने ही पहिचाना। उसने यह जानने का प्रयत्न किया कि वह उस वेश में क्यों आया था। परन्तु रूपधर ने उसके प्रश्नों का ठीक तरह जवाब न दिया। वह उसको अपने घर ले गई। उसको नहला-धुलाकर, भोजन खिलाकर उसने कहा—"यहाँ क़ैदी की तरह रह रही हूँ। मैं अपने देश जाना चाहती हूँ। यह बात सिर्फ़ मेरी सास ही जानती है। वह मेरी तरफ़ है। तुम अपने कार्यक्रम के बारे में, सब ठीक ठीक बताओ।"

ठीक उसी समय, वर्धन की पत्नी भी आई। रूपधर के तो मानों प्राण ही निकल गये। वह उसके पैरों पर पड़कर गिड़गिड़ाने लगा—"मुझे डराइये मत" उसने निवेदन किया। वर्धन की पत्नी ने उसके बारे में किसी को नहीं कहा और सुरक्षित वापिस जाने में भी उसकी सहायता की।

जाते जाते, रूपधर ने बुद्धिमति की मूर्ति चुरा ली। दीवार के बाहर, देवमय उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। उसने मूर्ति को उसके कन्धे पर रखा। दोनों चान्दनी में पैदल अपने शिविर की ओर चलने लगे।

बीच में, रूपधर ने मूर्ति को चुराने का सारा श्रेय स्वयं लेना चाहा। वह एक कदम पीछे हटा, और उसने उसको मारने के लिए तलवार उठाई। तलवार की परिछाई देखकर, देवमय झट पीछे मुड़ा और अपनी तलवार दिखाकर, उसने रूपधर को निरायुध कर दिया। उसके बाद, देवमय, रूपधर के हाथ पैर बाँधकर, उसको लात मारता हुआ शिविर ले गया।

अभी और है)

आलसी राम

श्री राजेन्द्र नागर, लखनऊ

★

एक जने थे आलसीराम
खाली रहना उनका काम
खाट से केवल नाता था
काम न उनको भाता था।

चिलम-तमाखू दो थे मीत
काम से उनको चढ़ती शीत
शाम हुई और चढ़ी उमंग
यार-दोस्त ने पीसी भंग।

चढ़ी भंग हुए गड़गप्प
बुद्धि सारी हो गई ठप्प
सारे दिन वे मारें मक्खी
लोग कहें, है बिल्कुल सनकी।

एक बार घर आया तार
बाहर जाना! थे लाचार
लेकिन एक समस्या भारी
कौन करे इनकी तैयारी।

इसी सोच में आई शाम
फिर तो चले भंग के जाम
एकाएक हो आई याद
जाना इन्हें फर्रुखाबाद।

बाँधा जल्दी बोरा-बिस्तर
ढीले पड़ गए सभी पलस्तर
देखी घड़ी तो उड़ गए होश
ठंडा पड़ गया सारा जोश।

किसी तरह तांगा मँगवाया
खूब जोर घोड़ा भगवाया
जैसे आए आलसीराम
गाड़ी चल दी अपने गाम।

सुन लो बच्चो मेरी बात
इसमें नहीं जरा भी घात
जिसने भी आलस की ठानी
होगी उसकी यही कहानी।

पहिले किसी ज़माने में, दिल्ली सम्राट का विजयदास नाम का एक प्रधान मन्त्री था। सम्राट नाम मात्र था। शासन का सारा भार विजयदास पर ही था। इसलिए राजा, सामन्त वगैरह विजयदास को भय और भक्ति की दृष्टि से देखते थे। बड़ा आदर करते थे। सब उसको विजय महाराजा कहकर पुकारते।

यद्यपि वह भोग-विलास में रह सकता था, परन्तु उसका मन वैराग्य के प्रति झुक रहा था। वह अच्छी कविता कर सकता था। इसलिए जब कभी उसे समय मिलता, तो वह तत्वपूर्ण पद लिखता। उसके पद पढ़कर बैरागी आनन्दित होते। थोड़े दिनों में, विजयदास के पद सारे देश में प्रचलित हो गये। और उसका नाम भी देश पर में मशहूर हो गया।

हरिद्वार में, एक मठ में, विज्ञानचन्द्र नाम का एक तत्वज्ञानी आया। वह सन्यासियों के गीत सुनकर बड़ा खुश हुआ। "इन गीतों को किसने लिखा? ये कहाँ रहते हैं?" उसने कई से पूछा। उसे मालूम हुआ कि उन गीतों के लेखक का नाम विजयदास था और वह दिल्ली में रहा करता था। विज्ञानचन्द्र ने उस तत्ववेत्ता से मिलना चाहा। वह हरिद्वार से दिल्ली पहुँचा।

"विजयदास नाम का तत्ववेत्ता कहाँ रहता है?" विज्ञानचन्द्र ने कई से पूछा। पर कोई भी उसे कुछ न बता पाया। दिल्ली नगर बहुत बड़ा है। उसमें बहुत-से तत्ववेत्ता रहते हैं। उनके बारे में, आम जनता को कुछ नहीं मालूम होता। महामन्त्री वियज महाराज को सब

श्री ओंकरनाथ

जानते थे। पर विज्ञानचन्द्र यह न जानता था कि वह ही विजयदास था।

"आश्चर्य की बात है कि इतने बड़े तत्ववेत्ता को इस नगर में कोई नहीं जानता है!" सोचते हुए, विज्ञानचन्द्र ने सारी दिल्ली छान ली पर कोई फ़ायदा नहीं हुआ। एक दिन वह एक मठ के समीप से जा रहा था कि उसको अन्दर से विजयदास का एक गीत सुनाई दिया। तुरन्त उसने मठ के अन्दर जाकर सन्यासियों से पूछा—"क्या आप जानते हैं, इस गीत के रचयिता तत्ववेत्ता कहाँ रहते हैं?"

"वह विजय महाराजा है। वे दिल्ली सम्राट के महामन्त्री हैं। क़िले में उनका महल है, वहाँ जाकर उन्हें देखने की कोशिश की जा सकती है।" सन्यासियों ने कहा।

विज्ञानचन्द्र को उनकी बातों पर विश्वास न हुआ। तत्वज्ञानी भला मन्त्री कैसे हो सकता है? उनको सब महाराजा कहकर क्यों बुलाते है? इसमें ज़रूर कोई न कोई रहस्य है।

इस रहस्य को जानने के लिए, विज्ञान चन्द्र सीधे, विजय महाराज के महल के

पास गया। वहाँ द्वार पालक से उसने कहा—"मैं महामन्त्री को एक बार देखना चाहता हूँ।" द्वार पालक ने हँसकर कहा—"वह असम्भव है। राजा-महाराजा ही उनके दर्शन के लिए सप्ताहों यहाँ पड़े रहते हैं! फिर साधारण सन्यासी को उनके दर्शन कैसे मिल सकते हैं?"

"यह विजयदास बड़ा ठग है। यहाँ महाराजाओं के भोग-विलास में जीवन व्यतीत करता है और वैराग्य के बारे में पद लिखता है।" विज्ञानचन्द्र ने मन ही मन सोचा। उसने निश्चय कर लिया कि उससे बातचीत करके ही वह वहाँ से जाएगा। "जबतक मैं तुम्हारे मन्त्री के दर्शन नहीं कर लूँगा, मैं यहीं रहूँगा। जाकर यह बात उनको कह दो—" उसने द्वार पालक से कहा।

पहिले द्वार पालक ने उसकी कोई परवाह न की। पर जब सन्यासी वहाँ से न हिला तो उसने हिम्मत करके, डरते डरते, महामन्त्री से उस सन्यासी के बारे में कहा। "दो दिनों से यह बात मुझसे क्यों नहीं कही? तुरन्त उनको अन्दर ले आओ।" महामन्त्री ने कहा।

विज्ञानचन्द्र अन्दर पहुँचा तो महामन्त्री सोने के झूले में मसनद लगाकर, झूल रहा था। दासी उन पर चामर झल रही थी। बड़े बड़े राज-कर्मचारी हाथ जोड़कर दूर खड़े थे। महामन्त्री कोई पत्र देख रहा था।

दरवाज़े के पास खड़ा होकर विज्ञानचन्द्र ने गुस्से में पूछा—"क्या तुम ही वह विजयदास हो जो वैराग्य गीत लिख कर प्रचार करते हो?"

महामन्त्री ने सिर उठाकर कहा—"जी, हाँ स्वामी जी! आइये, पधारिये! उस आसन पर कृपया बैठिये।"

"तत्वज्ञानी का ढोंग करनेवाले तुम जैसे के लिए ही ये आसन हैं, मुझ जैसे वास्तविक ज्ञानियों के लिए नहीं। इस तरह विलास में जीवन व्यतीत करते हुए तुम्हें शर्म नहीं आती!" विज्ञान चन्द्र ने पूछा।

"स्वामी! आपस से कौन-सी बात छुपी है? यह सुख प्रारब्ध है।" विजयदास ने कहा।

विज्ञानचन्द्र ने चकित होकर पूछा—"सुख प्रारब्ध का क्या मतलब है?"

"कष्टों की तरह, सुख भी प्रारब्ध के अनुसार आते हैं। हम उनसे बच नहीं सकते। उनसे अनासक्त होकर ही ज्ञानी को रहना चाहिये।" विजयदास ने कहा।

"मुझे धोखा दे रहे हो। मैं तुम्हारा सुख प्रारब्ध हटा सकता हूँ।" विज्ञान चन्द्र ने कहा।

"तो कृपा करके वही कीजिये। इन सुखों को मैंने स्वयं कोशिश करके नहीं पाया है। इन्हें चाहता भी नहीं हूँ।" विजयदास ने कहा।

उस दिन रात को, विज्ञानचन्द्र ने विजयदास को अलग बुलाकर कहा—

"बिना किसी को कहे, जैसे हो वैसे ही मेरे साथ चले आओ।"

"अच्छा, महाराज, मैं चलता हूँ।" विजयदास ने कहा।

आधी रात के समय दोनों निकले। सवेरे होते होते, वे शहर से बहुत दूर निकल गये। विज्ञानचन्द्र ने महामन्त्री को भूखा-प्यासा दुपहर तक चलाया। कड़ी धूप थी। एक जंगल में, एक बड़ा बड़ का पेड़ था।

"तुम उस बड़ के पेड़ के नीचे रहो। मैं पास ग्राम में भिक्षा माँगकर लाता हूँ।

हम भोजन करके फिर चलेंगे।" कहकर विज्ञानचन्द्र चला गया।

क्योंकि रात भर नींद न थी, और चलने की भी आदत न थी, छाया में जाते ही, विजयदास को नींद आ गई। वह ऊबड़-खाबड़ ज़मीन पर ही, आराम से सोने लगा।

विज्ञानचन्द्र के चले जाने के बाद, एक बड़ा कारवाँ उस तरफ़ से गुज़रा। वह कारवाँ नेपाल देश के राजा का था। वह एक बहुत ही आवश्यक काम पर महामन्त्री से मिलने दिल्ली जा रहा था।

वह कारवाँ भी पिछला पड़ाव छोड़कर सवेरे से चला आ रहा था। दोपहर हो गई थी। पर कहीं आराम करने के लिए छाया न मिली थी। आखिर वे भी बड़ के पेड़ को देखकर वहाँ पहुँचे।

पेड़ के नीचे सोते हुए विजयदास को देखकर, नेपाल के राजा ने उसे पहिचान लिया। तुरत उसने, जहाँ विजयदास सोया हुआ था, अपना तम्बू गड़वा दिया और नौकरों से उठवाकर उन्हें अपने गद्देदार बिस्तरे पर सुला दिया। चारों ओर गुलाब जल छिड़का गया। पंखों का भी

प्रबन्ध किया गया। वह बग़ल में एक कुर्सी पर बैठ गया, और महामन्त्री के जागने की प्रतीक्षा करने लगा। इतना सब होने पर भी विजयदास की नींद न टूटी थी।

विज्ञानचन्द्र, भिक्षा लेकर जब वापिस आया तो उसे बढ़ के पेड़ के नीचे कई तम्बू, घोड़े, और हाथी दिखाई दिये। हथियार लेकर सैनिक इधर उधर गश्त लगा रहे थे। एक तरफ़ खाना बनाने के लिए बड़ा चूल्हा था।

विजयदास कहाँ गया और ये तम्बू किसके हैं?—विज्ञानचन्द्र न समझ सका। उसने सन्देह किया कि उसके जाते ही, विजयदास ने ये सब मँगवाये होंगे। फिर उसने सोचा कि यह सम्भव न था।

उसे कुछ सूझ नहीं रहा था। वह यूँ ही खड़ा था कि नौकरों ने आकर कहा—"यह नेपाल राजा का पड़ाव है। तू कौन है? जा, जा।"

"मैं विजयदास की तलाश कर रहा हूँ।" विज्ञान चन्द्र ने कहा।

"वे अभी तक सोकर नहीं उठे हैं। हमारे महाराज भी उनसे बातचीत करने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। उनके

दर्शन अभी नहीं हो सकते।" सैनिकों ने कहा।

उसी समय, आँखें मलता हुआ विजयदास उठा। उसे सामने नेपाल राजा दिखाई दिया। दोनों गले मिले।

"आप कब आये हैं? आपने मुझे क्यों नहीं उठाया? मेरे साथ एक सन्यासी थे। वे कहाँ हैं?" विजयदास ने पूछा।

नेपाल महाराजा ने अपने सैनिकों को बुलाकर आज्ञा दी—"अगर कहीं यहाँ आस-पास कोई सन्यासी हो, तो उनको यहाँ बुला लाओ।"

जल्दी ही, वे विज्ञान चन्द्र को नेपाल राजा के तम्बू में लाये। उसे, विजयदास बड़े बड़े मोटे गद्दों पर बैठे दिखाई दिया। नेपाल का महाराजा स्वयं उन पर पंखा कर रहा था। विज्ञान चन्द्र को देखते ही, विजयदास ने खड़े होकर कहा—"स्वामी! आपके जाने के बाद मुझे गहरी नींद आ गई थी। जब मैं उठा तो मैं इन गद्दों पर सो रहा था। ये नेपाल के महाराजा हैं। मैं यह भी नहीं जानता कि ये कब आये हैं। क्या हम चल सकते हैं?"

नेपाल के महाराज ने हैरान होकर कहा—"मैं आपसे मिलने के लिए अपने देश से चला आ रहा हूँ। आप कहाँ जा रहे हैं?"

"नहीं नहीं, मैं ही जाता हूँ। मैं सब जान गया हूँ। मैं तुम्हें कुछ सिखाना चाहता था। पर मुझे ही तुम से कुछ सीखना पड़ा। सुख प्रारब्ध को भोगे बग़ैर नहीं रहा जा सकता। भोगो। तुम महाज्ञानी हो। मुझे भी तुमने ज्ञान-भिक्षा दी है।" कहता हुआ विज्ञान चन्द्र अपने रास्ते पर चुपचाप चला गया।

फ़ोटो - परिचयोक्ति - प्रतियोगिता

जुलाई १९५७ :: पारितोषिक १०)
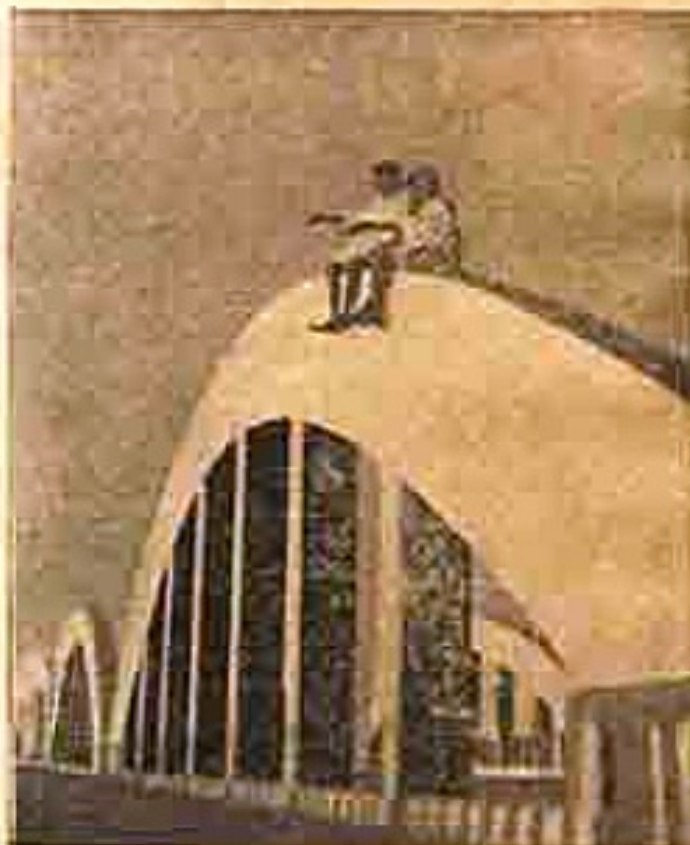
कृपया परिचयोक्तियाँ कार्ड पर ही भेजें ।

ऊपर के फ़ोटो के लिए उपयुक्त परिचयोक्तियाँ चाहिए। परिचयोक्तियाँ दो-तीन शब्द की हों और परस्पर संबन्धित हों। परिचयोक्तियाँ पूरे नाम और पते के साथ कार्ड पर ही लिख कर निम्नलिखित पते पर ता. ६, मई '५७ के अन्दर भेजनी चाहिये।

फ़ोटो - परिचयोक्ति - प्रतियोगिता
चन्दामामा प्रकाशन
वडपलनी :: मद्रास - २६

मई – प्रतियोगिता – फल

मई के फ़ोटो के लिये निम्नलिखित परिचयोक्तियाँ चुनी गई हैं।
इनके प्रेषक को १० रु. का पुरस्कार मिलेगा।

पहिला फ़ोटो :
'मेरा बल भरपूर निराला!'

दूसरा फ़ोटो :
'मेरा कौशल सब से आला!'

प्रेषक : श्री अरुण कुमार भार्गवा, C/o. श्री हेच. बी. भार्गवा, ५ ब्लंट स्क्वेर, लखनऊ।

मेंढक

मछलियां जलचर हैं। वे पानी में ही जी सकती हैं। मेंढ़क भूचर हैं और जलचर भी। शुरू में उनका जीवन पानी में चलता है, बाद में वे ज़मीन पर आते हैं। मादा मेंढक पानी में अंड़े देती है। उन पर कोई सफ़ेद परत रहती है। ये अंड़े धीमे धीमे बढ़ते हैं। इनका एक सिरा, दूसरे सिरे से ज़रा बड़ा होता है, मोटी ओर सिर होता है और पतली ओर पैर।

एक दो दिन में अंडे से बच्चे बाहर निकलते हैं, मुख, नाक वग़ैरह बन जाते हैं। दाईं तरफ़ उसके "श्वास रन्ध्र" होता है। वह मुख से पानी खींचकर इस रन्ध्र द्वारा बाहर फेंकता है।

इस अवस्था में वह शाकाहारी है। जल की तह में खाई वग़ैरह खाता है। इस भोजन से उसका शरीर बड़ा होता है। जहाँ पूँछ बननी शुरू हुई, वहाँ दो पैर बनते हैं। बड़े होने पर, श्वास रन्ध्र में से एक पैर आता है; बाद में दूसरा पैर भी आता है। चारों पैरों के बन जाने पर भी पूँछ बनी रहती है।

इस दशा में मेंढकों के बच्चों के शरीर में भी परिवर्तन होता है। उसमें फेफड़े बनते हैं। उसका मुख बड़ा हो जाता है। इस अवस्था में मेंढक अपनी पूँछ ही खाने लगता है। वह पूँछ धीमे धीमे कम होती जाती है। उसके मुख में जीभ बनती है। वह मुख के अग्रस्थान में चिपटी रहती है।

पूँछ के पूरे ख़तम होने से पहिले ही, मेंढक बाहर आकर उछलने-कूदने लगता है, चिल्लाने लगता है। वह कृमि-कीटों को खाने भी लगता है। अब वह पूर्णतः मांसाहारी हो जाता है।

यद्यपि मेंढक जैसे प्राणी भूमि पर भी हैं, पर वे पानी से बहुत दूर, जहाँ नमी न हो, नहीं रह सकते, क्योंकि उनके चर्म की रक्षा करने के लिए न बाल होते हैं, न कुछ और ही। इसीलिए वे जल के पास रहते हैं।

हम दो तरह के मेंढक देखते हैं। एक वे जिनका चर्म मुलायम होता है, दूसरे वे, जिनका चर्म सूखा, खुरदरा झुर्रियोंवाला होता है। पहिले मुलायम होते हैं, और दूसरे गन्दे और खुरदरे। उनके आगे के पैर छोटे होते हैं। छोटे छोटे मेंढकों के दान्त होते हैं, दूसरी तरह के मेंढकों के दान्त नहीं होते।

मेंढक ऐसी चीज़ों को नहीं खाते, जो हिलते-डुलते नहीं हों—जो मर गये हों। उनकी जीभ लम्बी और चिक्नी होती है। मेंढक जब कुछ निगल्ता है, तो आँखें मींच लेता है।

नर मेंढक ही चिल्लाते हैं। उनके फ़ेफड़े होते हैं। वे उसमें हवा जाने देते हैं। जब उसे वे बाहर करते हैं तो आवाज़ होती है।

जो कृमि, कीट, मेंढक के आहार हैं, वे कभी कभी हमारा अपकार भी करते हैं। मेंढकों से हमारा फ़ायदा है। इसलिये हमें उनकी रक्षा करनी चाहिए।
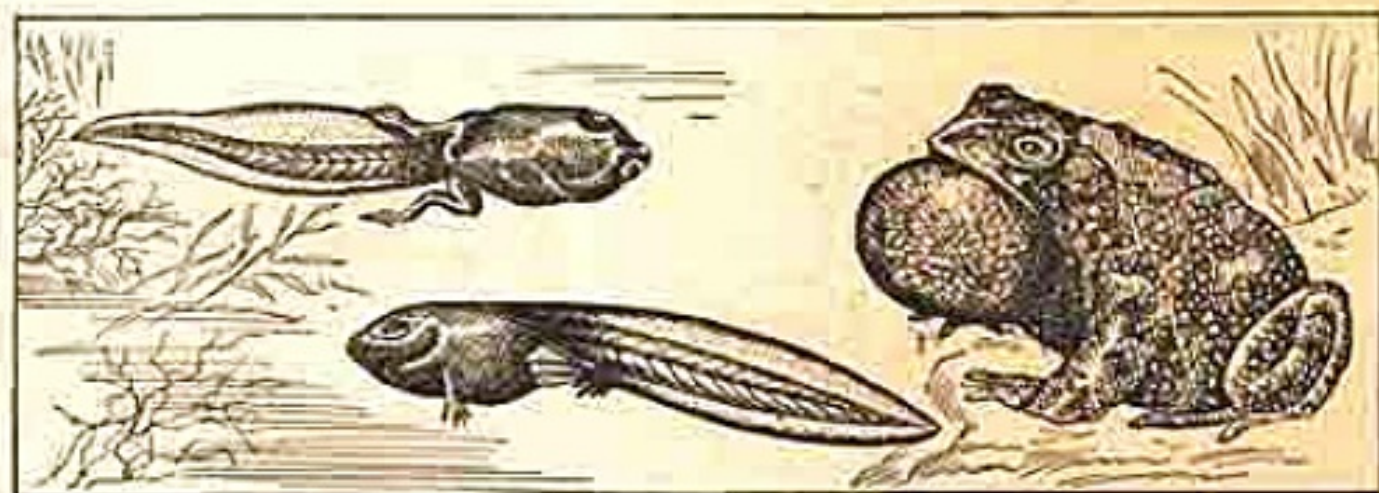
प्रो० पी. सी. सरकार

रहस्यपूर्ण दियासलाई के डब्बे का जादू अच्छा है। एक साधारण दियासलाई का डब्बा बीचोंबीच तेज़ चाकू से करीब करीब पूरा काटा जाता है;— जैसा कि चित्र में दिखाया गया है। इस तरह काटी जगह में एक ताश का पत्ता रखा जाता है। यद्यपि वह दियासलाइयों के बीच में आ जाता है, तो भी, जिस प्रकार चित्र में, बाण के चिन्ह से दिखाया गया है, दियासलाई का डब्बा, आगे पीछे सरकाया जा सकता है। जब इस जादू का प्रदर्शन होगा तो देखकर सब अचरज करेंगे। क्योंकि वे नहीं जानते होंगे कि यह दियासलाई का डब्बा खास तौर पर, खास काम के लिए जादूगर बनवाता है।

यह जादू करने के लिए, पहिले से ही जादूगर को दियासलाई का डब्बा निम्न रूप से बनाना चाहिये :

डब्बा के बाहरी भाग को, सिवाय तह के, तीनों तरफ़ काटना चाहिये। अन्दर का हिस्सा ले लिया जाता है और खाली कर दिया जाता है; क्योंकि दियासलाइयों को तीन भागों में काटना होगा। एक तिहाई हिस्सा जिसमें मसाला लगा हुआ होता है, डब्बे के एक तिहाई भाग से, गोंद द्वारा जोड़ दिया जाता है; जैसा कि चित्र में है। और बाकी दियासलाई, डब्बे के बाकी भाग से चिपकायी जाती है, जैसे कि चित्र ३ में है। और बीच के भाग की, जैसा कि चित्र में दिखाई गया है, सिर्फ़ तह ही रह जायेगी और

दोनों तरह कुछ न होगा। जब ताश का पत्ता बीच में रखा जाता है तो दियासलाइयों को इधर उधर हिलाया जा सकता है, जो देखने में वस्तुतः असम्भव मालूम होता है।

पर एक ही दर्शक-वृन्द के सामने दो बार नहीं करना चाहिये। सब दियासलाइयों को होशियारी से चिपकाना चाहिये। नहीं तो वे इधर उधर गिर जायेंगी।
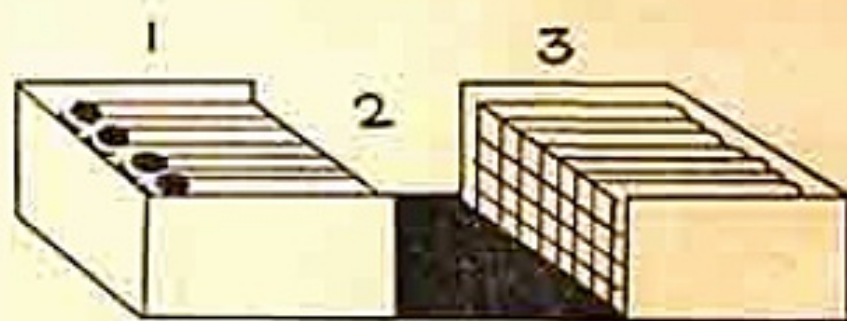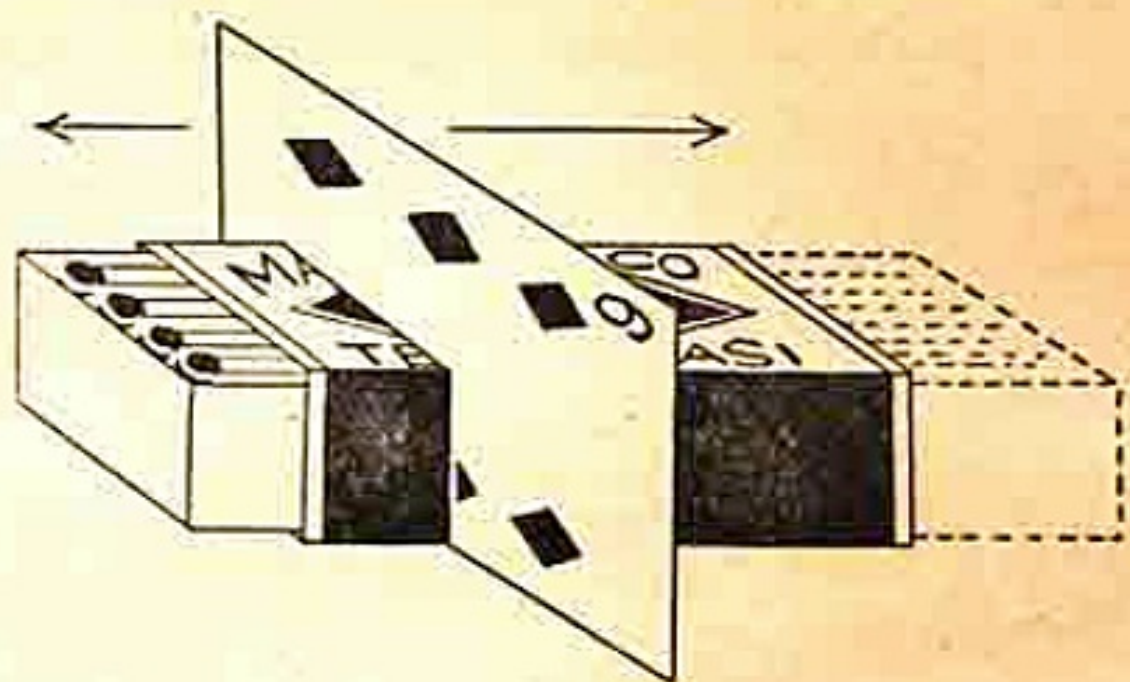
देखनेवालों का आश्चर्य होगा। वे सोचेंगे कि ताश के पत्ते में कोई जादू है। ताश का दर्शकों की परीक्षा के लिए, खेल के अन्त में फेंका जा सकता है। यह जादू काफी आकर्षक है,

[यदि पाठक इस जादू के सम्बन्ध में अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहें तो वे निम्न पते पर पत्र भेज सकते हैं: **प्रो. पी. सी. सरकार,** मेजीशिएन, पोस्ट बालीगंज, कलकत्ता-१९.]

मास्को-स्थित विदेशी साहित्य प्रकाशन गृह ने श्री एटुकूरि बलराममूर्ति लिखित "आंध्रजाति के संक्षिप्त इतिहास" के रूसी अनुवाद का मुद्रण किया है। पुस्तक का सम्पादन प्रो. ए. एम. थाकोव ने किया और उन्होंने ही भूमिका लिखी। प्रो. थाकोव इंगित करते हैं कि जनता का यह संक्षिप्त इतिहास तेलुगु भाषा में प्रणीत इतिहास सम्बन्धी ऐसी कृतियों पर अधिकांशतः आधारित है, जो हमारे देश में ज्ञात नहीं है। एक और उल्लेखनीय बात यह है कि इसमें विजयनगर के इतिहास का, जिसके विषय में सोवियत संघ में कम जानकारी है, विस्तृत विवरण है।

* * *

उत्तर प्रदेश के विभिन्न सामुदायिक खण्डों में रहनेवाली जनता, विशेषकर निर्धन परिवारों की आय में वृद्धि कराने के उद्देश्य से, जिससे कि देश की सम्पन्नता और नागरिकों का जीवन-स्तर ऊँचा रहे—एक योजना आरम्भ की गयी है, जिसके अन्तर्गत उन्हें कम खर्च पर आसानी से विभिन्न प्रकार की बनावट तथा छापों की सिलाई मशीनों के दिलाने की व्यवस्था है।

इधर महिला बचत पक्ष के अवसर पर मध्य प्रदेश के राज्यपाल ने अपने एक वक्तव्य में कहा कि भारत की प्रगति के प्रत्येक क्षेत्र में महिलाओं का योग-दान उल्लेखनीय रहा है। सामाजिक एवं शिक्षा-सुधार तथा आर्थिक उन्नति के क्षेत्र में हमारे देश की महिलाओं ने हमेशा महत्वपूर्ण कार्य किया है।

* * *

इधर भारत सरकार और 'यूनेस्को' की प्रमुख सह-योजना की तरफ़ से—'दिल्ली,' 'अपना कर,' 'मनोरंजन और काम' तथा 'अमरीका' नामक चार पुस्तकें प्रकाशित की गयी हैं, जो बच्चों एवं कम पढ़े हुए लोगों के लिए बड़ी महत्वपूर्ण और अत्यन्त उपयोगी हैं। इन किताबों के तैयार करने में काफ़ी सजगता दिखायी गयी है। ये चारों पुस्तकें देहली पब्लिक लायब्रेरी के लिए मक्तबा जामिआ लि. दिल्ली, द्वारा तैयार की गयी हैं।

* * *

राजस्थान सरकार ने जुलाई १९५८ तक राज्य में मिडिल कक्षाओं तक सभी विषयों की नयी राष्ट्रीयकृत पाठ्य पुस्तकें चालू करने का निश्चय किया है। एक निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार पाठ्य पुस्तकों के राष्ट्रीयकरण का कार्य दो बार में पूरा किया जायगा और सर्व प्रथम पहली से पाँचवीं कक्षा तक की नयी चुनी हुई पाठ्य-पुस्तकें नये सत्र, अर्थात् जुलाई १९५७ से चालू कर दी जायेंगी।

* * *

ता. १, अप्रैल '५७ से सारे भारत में नये सिक्के चालू कर दिये गये हैं। कुछ समय के लिए नये और पुराने सिक्के दोनों अमल में रहेंगे।

चित्र - कथा

एक दिन शाम को दास और बास गाँव के बाहर निकल पड़े। साथ में 'टाइगर' भी था। उन्हें बगीचे में जाकर अमरूद खाने की इच्छा हुई। जब वे दोनों पेड़ पर चढ़ बैठे तो बागवान ने उन्हें देखा और पकड़ने के लिए दौड़ पड़ा। पर बीच में एक साँप ने उसका रास्ता रोककर उसे डसना चाहा। 'टाइगर' फौरन वहाँ जाकर ज़ोर ज़ोर से भौंका। साँप हट गया। यह मौका देख बागवान ने उसे अपनी लाठी से मार दिया और 'टाइगर' की बड़ी तारीफ़ की। उसके बाद दास और बास को पास बुलाकर स्वयं अमरूद के फल चुनकर दे दिये।

Printed by B. NAGI REDDI at the B. N. K. Press (Private) Ltd., and Published by him for

हम प्रत्येक व्यक्ति और व्यापारिक संस्थाओं को आश्वासन देना चाहते हैं कि कलात्मक सृजन, स्वच्छतम कार्य-निपुणता, आकर्षणीय छपाई और शीघ्र वितरण हमारा ध्येय है।
★
हिन्दी, अंग्रेजी, तेलुगु, तमिल, कन्नड़, मराठी, गुजराती, मलयालम और उड़िया में छपाई का कार्य लिया जाता है।
★
दी बी. एन. के. प्रेस
(प्राइवेट) लिमिटेड
चन्दामामा बिल्डिंग्स :: मद्रास-२६
टेलीफ़ोन : ८८४७४

डोंगरे
बालामृत

POORNA
PENS
POORNA INDUSTRIES GANDHINAGAR
VIJAYAWADA

Photo by Vidyavrata

पुरस्कृत परिचयोक्ति

"मेरा कौशल सब से आला!"

प्रेषक : श्री अरुण कुमार, लखनऊ

CHANDAMAMA (Hindi) MAY 1957 Regd. No. M. 5452

भुवन - सुन्दरी